अध्याय १९

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा श्रील रूप गोस्वामी को उपदेश

इस अध्याय का सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में दिया गया है। रामकेलि नामक गाँव में श्री चैतन्य महाप्रभु से रूप तथा सनातन दोनों भाई मिले और उसके बाद ही वे अपनी-अपनी सरकारी नौकरी से निकलने का उपाय सोचने लगे। दोनों भाइयों ने *पुरश्चरण* विधि कराने तथा कृष्ण-नाम का कीर्तन करने के लिए कुछ ब्राह्मण नियुक्त किये। श्रील रूप गोस्वामी ने एक बनिये के यहाँ दस हजार स्वर्ण मुद्राएँ जमा कर दीं और शेष धन अपने साथ दो नावों में भरकर बाक्ला चन्द्रद्वीप नामक स्थान पर लेते आये। वहाँ पर उन्होंने यह धन ब्राह्मणों, वैष्णवों तथा अपने सम्बन्धियों में बाँट दिया और कुछ अंश निजी आवश्यकता तथा आपात्काल के लिए रख लिया। उन्हें यह सूचित किया गया कि श्री चैतन्य महाप्रभु मध्य प्रदेश के जंगल से होकर जगन्नाथपुरी से वृन्दावन जा रहे हैं; अतएव उन्होंने यह पता लगाने के लिए दो व्यक्ति भेजे कि महाप्रभु जगन्नाथपुरी से वृन्दावन के लिए कब यात्रा शुरू कर रहे हैं। इस तरह रूप गोस्वामी तो सेवा-निवृत्त हो गये, किन्तु सनातन गोस्वामी ने नवाब से कहा कि मैं बीमार हूँ, अतएव कार्य नहीं कर सकता। यह बहाना बनाकर वे घर पर बैठ गये और विद्वान ब्राह्मणों के संग में *श्रीमद्भागवत* का अध्ययन करने लगे। नवाब हुसेन शाह ने पहले तो यह देखने के लिए कि असलियत क्या है, अपने निजी वैद्य को भेजा, किन्तु बाद में वह स्वयं सनातन गोस्वामी के पास यह देखने के लिए आया कि वे राज-कार्य पर

क्यों नहीं जा रहे हैं। यह जानकर कि वे अपने पद से त्याग-पत्र देना चाहते हैं, नवाब ने उन्हें बन्दी बनाकर जेल में डाल दिया। इसके बाद नवाब उड़ीसा पर आक्रमण करने चला गया।

जब श्री चैतन्य महाप्रभु मध्य प्रदेश के जंगल (झारिखण्ड) से होकर वृन्दावन के लिए चल पड़े, तब रूप गोस्वामी ने अपना घर छोड़ दिया और सनातन के पास समाचार भेजा कि वे घर छोड़कर अपने छोटे भाई (अनुपम मल्लिक) के साथ महाप्रभु से मिलने जा रहे हैं। अन्त में श्रील रूप गोस्वामी प्रयाग पहुँचे और श्री चैतन्य महाप्रभु से लगातार दस दिनों तक मिले। इसी बीच वल्लभ भट्ट ने बड़े ही आदर के साथ महाप्रभु को अपने यहाँ आमन्त्रित किया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने वल्लभ भट्ट से श्रील रूप गोस्वामी का परिचय कराया। इसके बाद रघुपति उपाध्याय नामक एक ब्राह्मण ने आकर महाप्रभु से कृष्णभावनामृत के विषय में विचार-विमर्श किया। इसके बाद कविराज गोस्वामी ने वृन्दावन में श्री रूप और सनातन के रहन-सहन का विस्तार से वर्णन किया है। प्रयाग में दस दिनों के दौरान महाप्रभु ने श्री रूप गोस्वामी को *भक्तिरसामृतसिन्धु* के मुख्य सिद्धान्तों की शिक्षा दी। इसके बाद महाप्रभु ने रूप गोस्वामी को वृन्दावन भेज दिया। महाप्रभु स्वयं वाराणसी लौट गये और चन्द्रशेखर के घर में रुके।

वृन्दावनीयाः रस-केलि-वार्तां
कालेन लुप्तां निज-शक्तिमुत्कः ।
सञ्चार्य रूपे व्यतनोत्पुनः स
प्रभुर्विधौ प्रागिव लोक-सृष्टिम् ॥ १॥

वृन्दावनीयाम्—वृन्दावन से सम्बन्धित; **रस-केलि-वार्ताम्**—श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन; **कालेन**—समय के साथ; **लुप्ताम्**—लुप्त; **निज-शक्तिम्**—अपनी निजी शक्ति; **उत्कः**—उत्सुक होकर; **सञ्चार्य**—संचारित करके; **रूपे**—रूप गोस्वामी को; **व्यतनोत्**—

प्रकट की; **पुनः**—दोबारा; **सः**—वे; **प्रभुः**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **विधौ**—ब्रह्माजी को; **प्राक् इव**—पहले की भाँति; **लोक-सृष्टिम्**—ब्रह्माण्ड की सृष्टि।

अनुवाद

इस विराट् जगत् की सृष्टि करने के पूर्व भगवान् ने ब्रह्मा के हृदय में सृष्टि की विस्तृत जानकारी प्रकाशित की और वैदिक ज्ञान प्रकट किया। ठीक उसी तरह से महाप्रभु ने भगवान् कृष्ण की वृन्दावन-लीलाओं को पुनर्जीवित करने के लिए रूप गोस्वामी के हृदय को आध्यात्मिक शक्ति से संचारित किया। श्रील रूप गोस्वामी इस शक्ति से वृन्दावन में कृष्ण की उन लीलाओं को पुनरुज्जीवित कर सके, जो प्रायः विस्मृत हो चुकी थीं। इस तरह उन्होंने सारे विश्व में कृष्णभावनामृत का विस्तार किया।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥२॥

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ २॥

जय जय श्री-चैतन्य—श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो; **जय नित्यानन्द**—श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो; **जय अद्वैत-चन्द्र**—श्री अद्वैत प्रभु की जय हो; **जय गौर-भक्त-वृन्द**—महाप्रभु के सभी भक्तों की जय हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैतचन्द्र की जय हो तथा महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

श्री-रूप-सनातन रहे रामकेलि-ग्रामे ।
प्रभुरे मिलिया गेला आपन-भवने ॥३॥

श्री-रूप-सनातन रहे रामकेलि-ग्रामे ।
प्रभुरे मिलिया गेला आपन-भवने ॥ ३॥

श्री-रूप-सनातन—श्री रूप और सनातन दोनों भाई; **रहे**—रहते थे; **रामकेलि-ग्रामे**—रामकेलि गाँव में; **प्रभुरे**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **मिलिया**—मिलकर; **गेला**—लौट गये; **आपन-भवने**—अपने घरों को।

अनुवाद

रामकेलि गाँव में श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने के बाद रूप तथा सनातन दोनों भाई अपने अपने घर लौट गये।

दुई-भाइ विषय़-त्यागेर उपाय़ सृजिल ।
भौ-धन दिय़ा दुई ब्राह्मणे वरिल ॥४॥

दुइ-भाइ विषय-त्यागेर उपाय सृजिल ।
बहु-धन दिया दुइ ब्राह्मणे वरिल ॥४॥

दुइ-भाइ—दोनों भाइयों ने; **विषय-त्यागेर**—भौतिक कार्यकलापों का त्याग करने का; **उपाय सृजिल**—उपाय ढूँढा; **बहु-धन**—बहुत धन; **दिया**—देकर; **दुइ ब्राह्मणे**—दो ब्राह्मणों को; **वरिल**—नियुक्त किया।

अनुवाद

दोनों भाइयों ने एक उपाय सोचा जिससे वे अपने भौतिक कार्यकलापों को त्याग सकें। इसके लिए उन्होंने दो ब्राह्मण नियुक्त किये और उन्हें प्रचुर धन दिया।

कृष्ण-मन्त्रे कराइल दुई पुरश्चरण ।
अचिराञ्पाइबारे चैतन्य-चरण ॥५॥

कृष्ण-मन्त्रे कराइल दुइ पुरश्चरण ।
अचिरात्पाइबारे चैतन्य-चरण ॥५॥

कृष्ण-मन्त्रे—हरे कृष्ण के पावन मन्त्र में; **कराइल**—करवाया; **दुइ**—दो; **पुरश्चरण**—धार्मिक कर्म; **अचिरात्**—बिना विलम्ब के; **पाइबारे**—पाने के लिए; **चैतन्य-चरण**—श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में शरण।

अनुवाद

ब्राह्मणों ने धार्मिक कृत्य सम्पन्न किया और कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण किया, जिससे दोनों भाइयों को शीघ्र ही श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में शरण प्राप्त हो सके।

तात्पर्य

पुरश्चरण एक कर्मकाण्ड है, जिसे दक्ष गुरु या ब्राह्मण के मार्गदर्शन में

सम्पन्न किया जाता है। इसे किसी मनोकामना की पूर्ति के लिए सम्पन्न किया जाता है। इसमें मनुष्य प्रातःकाल जल्दी उठता है, हरे कृष्ण मन्त्र का जप करता है, आरती द्वारा अर्चन करता है और अर्चाविग्रहों की पूजा करता है। ये कार्य मध्य लीला के पंद्रहवें अध्याय के श्लोक १०८ में वर्णित हैं।

श्री-रूप-गोसाञि तबे नौकाते भरिया ।
आपनार घरे आइला बहु-धन लञा ॥६॥

श्री-रूप-गोसाञि तबे नौकाते भरिया ।
आपनार घरे आइला बहु-धन लञा ॥ ६ ॥

श्री-रूप-गोसाञि—श्री रूप गोस्वामी; **तबे**—तब; **नौकाते भरिया**—नौकाओं में भरकर; **आपनार घरे**—अपने घर को; **आइला**—लौट गये; **बहु-धन लञा**—बहुत धन लेकर।

अनुवाद

इसी समय श्री रूप गोस्वामी अपने साथ नावों में प्रचुर मात्रा में धन लेकर घर लौटे।

ब्राह्मण-वैष्णवे दिला तार अर्ध-धने ।
एक चौठि धन दिला कुटुम्ब-भरणे ॥७॥

ब्राह्मण-वैष्णवे दिला तार अर्ध-धने ।
एक चौठि धन दिला कुटुम्ब-भरणे ॥ ७ ॥

ब्राह्मण-वैष्णवे—ब्राह्मणों और वैष्णवों को; **दिला**—दान के रूप में दे दिया; **तार**—धन का; **अर्ध-धने**—आधा भाग; **एक चौठि धन**—एक चौथाई धन; **दिला**—दिया; **कुटुम्ब-भरणे**—रिश्तेदारों को सन्तुष्ट करने के लिए।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने घर लाये गये धन का बँटवारा कर दिया। उन्होंने पचास प्रतिशत धन ब्राह्मणों तथा वैष्णवों को दान में दे दिया और पच्चीस प्रतिशत अपने सम्बन्धियों को दिया।

तात्पर्य

यह व्यावहारिक उदाहरण है कि किस तरह मनुष्य को अपना धन बाँटकर गृहस्थ जीवन से विरक्त हो जाना चाहिए। अपने धन का पचास प्रतिशत योग्य

तथा शुद्ध भगवद्भक्तों में वितरित कर देना चाहिए। पच्चीस प्रतिशत परिवार वालों को और शेष आवश्यकता पड़ने पर खर्च करने के लिए अपने पास रखना चाहिए।

দণ্ড-বন্ধ লাগি' চৌঠি সঞ্চয় করিলা ।
ভাল-ভাল বিপ্র-স্থানে স্থাপ্য রাখিলা ॥৮॥

दण्ड-बन्ध लागि' चौठि सञ्चय करिला ।
भाल-भाल विप्र-स्थाने स्थाप्य राखिला ॥८॥

दण्ड-बन्ध लागि'—कानूनी मामलों के लिए; **चौठि**—एक चौथाई; **सञ्चय करिला**—इकट्ठा किया; **भाल-भाल**—बहुत सम्मानित; **विप्र-स्थाने**—ब्राह्मण के पास; **स्थाप्य राखिला**—जमा करके रख दिया।

अनुवाद

उन्होंने अपनी चौथाई सम्पत्ति एक सम्मानित ब्राह्मण के पास रख दी। इसे उन्होंने अपनी निजी सुरक्षा के लिए रखा, क्योंकि उन्हें आशंका थी कि वे कहीं कोई कानूनी झंझट में न फँस जायें।

গৌড়ে রাখিল মুদ্রা দশ-হাজারে ।
সনাতন ব্যয় করে, রাখে মুদি-ঘরে ॥৯॥

गौड़े राखिल मुद्रा दश-हाजारे ।
सनातन व्यय करे, राखे मुदि-घरे ॥९॥

गौड़े—बंगाल में; **राखिल**—रखीं; **मुद्रा**—मुद्राएँ; **दश-हाजारे**—दस हजार; **सनातन**—उनका बड़ा भाई; **व्यय करे**—खर्च कर दीं; **राखे**—रखीं; **मुदि-घरे**—स्थानीय दुकानदार के घर पर।

अनुवाद

उन्होंने दस हजार सिक्के एक स्थानीय बंगाली बनिये के यहाँ जमा कर दिये थे, जिनका खर्च बाद में श्री सनातन गोस्वामी ने किया।

শ্রী-রূপ শুনিল প্রভুর নীলাদ্রি-গমন ।
বন-পথে যাবেন প্রভু শ্রী-বৃন্দাবন ॥১০॥

श्री-रूप शुनिल प्रभुर नीलाद्रि-गमन ।
वन-पथे याबेन प्रभु श्री-वृन्दावन ॥ १० ॥

श्री-रूप—श्री रूप गोस्वामी; **शुनिल**—सुना; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **नीलाद्रि-गमन**—जगन्नाथ पुरी को प्रस्थान; **वन-पथे**—वन के मार्ग से; **याबेन**—जायेंगे; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **श्री-वृन्दावन**—वृन्दावन।

अनुवाद

श्री रूप गोस्वामी ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथपुरी लौट गये हैं और जंगल से होकर वृन्दावन जाने की तैयारी कर रहे हैं।

রূপ-গোসাঞি নীলাচলে পাঠাইল দুই-জন ।
প্রভু যবে বৃন্দাবন করেন গমন ॥ ১১ ॥
রূপ-গোসাঞি নীলাচলে পাঠাইল দুই-জন ।
প্রভু যবে বৃন্দাবন করেন গমন ॥ ১১ ॥

রূপ-গোসাঞি—রূপ গোস্वामी ने; **নীলাচলে**—जगन्नाथ पुरी को; **পাঠাইল**—भेजा; **দুই-জন**—दो व्यक्तियों को; **প্রভু**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **যবে**—जब; **বৃন্দাবন**—वृन्दावन को; **করেন**—करेंगे; **গমন**—प्रस्थान।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने यह पता करने के लिए दो व्यक्ति जगन्नाथपुरी भेजे कि श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन के लिए कब प्रस्थान करेंगे।

শীঘ্র আসি' মোরে তাঁর দিবা সমাচার ।
শুনিয়া তদনুরূপ করিব ব্যবহার ॥ ১২ ॥
শীঘ্র আসি' মোরে তাঁর দিবা সমাচার ।
শুনিয়া তদনুরূপ করিব ব্যবহার ॥ ১২ ॥

শীঘ্র আসি'—बहुत जल्दी लौटकर; **মোরে**—मुझे; **তাঁর**—उनका; **দিবা**—दो; **সমাচার**—समाचार; **শুনিয়া**—सुनकर; **তৎ-অনুরূপ**—तदनुसार; **করিব**—मैं करूँगा; **ব্যবহার**—व्यवस्था।

अनुवाद

श्री रूप गोस्वामी ने दोनों व्यक्तियों से कहा, "तुम लोग जल्दी

लौटकर मुझे बताओ कि वे कब प्रस्थान करेंगे। तब मैं समुचित व्यवस्था करूँगा।"

এথা সনাতন-গোসাঞি ভাবে মনে মন ।
রাজা মোরে প্রীতি করে, সে—মোর বন্ধন ॥ ১৩॥

এথা সনাতন-গোসাঞি ভাবে মনে মন ।
রাজা মোরে প্রীতি করে, সে—মোর বন্ধন ॥ ১৩॥

এথা—यहाँ (बंगाल में); **সনাতন-গোসাঞি**—बड़े भाई सनातन गोस्वामी; **ভাবে**—विचार करते थे; **মনে মন**—मन में; **রাজা**—नवाब; **মোরে**—मुझे; **প্রীতি করে**—प्रेम करता है; **সে**—वह; **মোর**—मेरे ऊपर; **বন্ধন**—भारी कर्तव्य है।

अनुवाद

गौड़देश में रहते हुए सनातन गोस्वामी सोच रहे थे, "नवाब मुझसे अत्यन्त प्रसन्न है। मेरा निश्चित रूप से कर्तव्य बनता है।

কোন মতে রাজা যদি মোরে ক্রুদ্ধ হয় ।
তবে অব্যাহতি হয়, করিলুঁ নিশ্চয় ॥ ১৪॥

কোন মতে রাজা যদি মোরে ক্রুদ্ধ হয় ।
তবে অব্যাহতি হয়, করিলুঁ নিশ্চয় ॥ ১৪॥

কোন মতে—किसी न किसी प्रकार; **রাজা**—नवाब; **যদি**—यदि; **মোরে**—मुझ पर; **ক্রুদ্ধ হয়**—क्रुद्ध हो जाये; **তবে**—तब; **অব্যাহতি**—छुटकारा; **হয়**—है; **করিলুঁ নিশ্চয়**—मैंने निश्चय किया है।

अनुवाद

यदि नवाब किसी तरह मुझसे नाराज हो जाए, तो मुझे मुक्ति मिल सकती है। यही मेरा निश्चय है।"

অস্বাস্থ্যের ছদ্ম করি' রহে নিজ-ঘরে ।
রাজ-কার্য ছাড়িলা, না যায় রাজ-দ্বারে ॥ ১৫॥

অস্বাস্থ্যের ছদ্ম করি' রহে নিজ-ঘরে ।
রাজ-কার্য্য ছাড়িলা, না যায় রাজ-দ্বারে ॥ ১৫॥

अस्वास्थ्येर—अस्वस्थ होने का; **छद्म**—बहाना; **करि'**—करके; **रहे**—रहे; **निज-घरे**—अपने घर पर; **राज-कार्य्य**—सरकारी सेवा; **छाड़िला**—छोड़ दी; **ना य्राय**—नहीं गये; **राज-द्वारे**—नवाब के दरबार में।

अनुवाद

स्वास्थ्य खराब होने का बहाना करके सनातन गोस्वामी घर पर ही रहे। इस तरह उन्होंने अपनी सरकारी नौकरी छोड़ दी और राज-दरबार नहीं गये।

লোভী কায়স্থ-গণ রাজ-কার্য করে ।
আপনে স্বগৃহে করে শাস্ত্রের বিচারে ॥ ১৬॥

लोभी कायस्थ-गण राज-कार्य्य करे ।
आपने स्वगृहे करे शास्त्रेर विचारे ॥ १६॥

लोभी—लोभी; **कायस्थ-गण**—कायस्थ लोग; **राज-कार्य्य करे**—सरकारी सेवा करते; **आपने**—स्वयं; **स्व-गृहे**—अपने घर पर; **करे**—करते; **शास्त्रेर विचारे**—शास्त्रों की चर्चा।

अनुवाद

उनके लोभी क्लर्क तथा सचिवालय के कर्मचारी सरकारी कामकाज पूरा कर लेते, किन्तु सनातन घर पर रहते और शास्त्रों की चर्चा करते रहते।

तात्पर्य

सनातन गोस्वामी मन्त्री थे, जिनके अधीन सरकारी सचिवालय था तथा उनके अधीन सहायक—अनुसचिव और बाबू—सभी कायस्थ जाति के थे। पहले कायस्थ लोग ही सरकारी नौकरी और सचिवालय से सम्बन्धित होते थे और बाद में ऐसे पद पर काम करने वाले सभी लोग कायस्थ कहलाने लगे। इस तरह यदि कोई व्यक्ति अपनी पहचान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के रूप में नहीं कर पाता था, तो वह धनी तथा सम्मान्य पद पाने के लिए अपना परिचय कायस्थ के रूप में देता था। बंगाल में कहा जाता है कि जो व्यक्ति अपनी जाति नहीं बता पाता, वह अपने आपको कायस्थ कहता है। कुल मिलाकर, कायस्थ जाति सारी जातियों का मिश्रण है और इसमें वे लोग विशेष

रूप से सम्मिलित हैं, जो क्लर्क या सचिव का कार्य करते हैं। ऐसे लोग भौतिक दृष्टि से सदैव जिम्मेदार सरकारी पदों में लगे रहते हैं।

जब सनातन गोस्वामी आराम कर रहे थे और सरकारी नौकरी से पद-मुक्त होना चाहते थे, तब उनके सचिवालय के कर्मचारियों में अनेक कायस्थ उनका पद पाने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि जब सनातन गोस्वामी सरकारी मन्त्री थे और उनके सहायक कायस्थों ने देखा कि वे अब और आगे सेवा नहीं करना चाहते, तो वे अपने कार्यों में अत्यन्त दक्ष बन गये। सनातन गोस्वामी सारस्वत ब्राह्मण थे। कहा जाता है कि जब उन्होंने त्यागपत्र दिया, तो उनके नीचे काम करने वाला पुरन्दर खान, जो एक कायस्थ था, उनके पद पर बैठ गया।

ভট্টাচার্য পণ্ডিত বিশ ত্রিশ লঞা ।
ভাগবত বিচার করেন সভাতে বসিয়া ॥ ১৭ ॥

भट्टाचार्य्य पण्डित बिश त्रिश लञा ।
भागवत विचार करेन सभाते वसिया ॥ १७ ॥

भट्टाचार्य्य पण्डित—विद्वान पण्डित जो भट्टाचार्य कहलाते हैं; **बिश त्रिश**—बीस या तीस; **लञा**—अपने साथ लेकर; **भागवत विचार**—*श्रीमद्भागवत* की चर्चा; **करेन**—करते थे; **सभाते वसिया**—सभा में बैठकर।

अनुवाद

श्री सनातन गोस्वामी बीस-तीस विद्वान ब्राह्मणों की सभा में श्रीमद्भागवत पर चर्चा चलाते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने *भागवत-विचार* शब्दों की टीका निम्नलिखित प्रकार से की है। जैसाकि मुण्डक उपनिषद् (१.१.४-५) से पुष्टि होती है, शिक्षा की प्रणालियाँ दो प्रकार की हैं :

द्वे विद्ये वेदितव्य इति, ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति—परा चैवापरा च तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम् इति। अथ परा यया तदक्षरम् अधिगम्यते।

"शिक्षा-प्रणालियाँ दो प्रकार की हैं। पहली दिव्य ज्ञान (*परा विद्या*) से सम्बन्धित है और दूसरी भौतिक ज्ञान (*अपरा विद्या*) से सम्बन्धित है। सारे वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद तथा उनके उपसिद्धान्त, यथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष—ये सभी भौतिक ज्ञान (अपरा विद्या) से सम्बन्धित हैं। परा विद्या से मनुष्य अक्षर अर्थात् ब्रह्म या परम सत्य को समझ सकता है।" जहाँ तक वैदिक साहित्य का सम्बन्ध है, *वेदान्त-सूत्र* को *परा विद्या* के रूप में स्वीकार किया जाता है। *श्रीमद्भागवत* इस परा विद्या का भाष्य है। जो मुक्ति या मोक्ष की कामना करने वाले हैं और अपने आपको *वैदान्तिक* कहते हैं, वे भी उन्हीं गुटों के तुल्य हैं, जो धर्म, अर्थ तथा काम में उन्नति की इच्छा करते हैं। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष *चतुर्वर्ग* कहलाते हैं। ये सब निकृष्ट भौतिक ज्ञान के अन्तर्गत आते हैं। कोई भी साहित्य जो आध्यात्मिक जगत्, आध्यात्मिक जीवन, आध्यात्मिक पहचान तथा आत्मा के विषय में जानकारी देता है, वह *परा विद्या* कहलाता है। *श्रीमद्भागवत* का भौतिक जीवन से कोई सरोकार नहीं है। यह लोगों को *परा विद्या* की उच्चतर प्रणाली में प्रशिक्षित करने के लिए दिव्य ज्ञान प्रदान करता है। सनातन गोस्वामी *भागवत-विद्या* के विचार-विमर्श में लगे थे, जिसका अर्थ यह है कि वे केवल दिव्य आध्यात्मिक ज्ञान के विषय में विवेचना करते थे। कर्मी, ज्ञानी या योगी वास्तव में *श्रीमद्भागवत* के विषय में विचार-विमर्श करने के लिए सुपात्र नहीं हैं। केवल वैष्णव या शुद्ध भक्त ही इस ग्रन्थ की विवेचनाने के लिए सुपात्र हैं। जैसाकि स्वयं *श्रीमद्भागवत* (१२.१३.१८) में कहा गया है :

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं
यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते।
यत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं
तच्छृण्वन् सुपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः

यद्यपि *श्रीमद्भागवत* की गणना पुराणों में की जाती है, किन्तु यह विशुद्ध (निर्मल) पुराण कहलाता है। चूँकि इसमें किसी भौतिक विषय की विवेचना नहीं की गई है, अतएव दिव्य वैष्णव भक्त इसे पसन्द करते हैं। *श्रीमद्भागवत*

की विषय वस्तु परमहंसों के लिए है। कहा गया है— *परमोनिर्मत्सराणां सतां वेद्यम्। परमहंस* वह है, जो न तो भौतिक जगत् में रहता है, न किसी से ईर्ष्या-द्वेष रखता है। *श्रीमद्भागवत* में भक्ति की विवेचना की गई, जिससे जीव ज्ञान तथा वैराग्य के दिव्य पद तक ऊपर उठ सके। *श्रीमद्भागवत* (१.२.१२) में कहा गया है :

तच्छ्रद्दधानाः मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया।
पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया॥

"परम सत्य का साक्षात्कार तो निष्ठावान जिज्ञासु या मुनि ही करते हैं, जो वेदान्त श्रुति सुनकर भक्ति करके ज्ञान और वैराग्य से अच्छी तरह युक्त होते हैं।"

यह भावुकता नहीं है। ज्ञान तथा वैराग्य भक्ति द्वारा, अर्थात् सुप्त भक्तिभाव या कृष्णभावना को जाग्रत करके प्राप्त किये जा सकते हैं (*भक्त्या श्रुतगृहीतया*)। जब कृष्णभावना जाग्रत हो जाती है, तब सकाम कर्म, अर्थ तथा भौतिक भोग से छुट्टी मिल जाती है। इसे *नैष्कर्म्य* कहा जाता है। छुट्टी मिल जाने पर इन्द्रियतृप्ति के लिए कठिन परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। *श्रीमद्भागवत* व्यासदेव की अन्तिम परिपक्व रचना है। इसे भक्तिपूर्वक स्वरूपसिद्ध आत्माओं की सभा में पढ़ना और सुनना चाहिए। ऐसे अवसर पर मनुष्य सारे भौतिक बन्धन से मुक्त हो सकता है। सनातन गोस्वामी ने यही मार्ग अपनाया, क्योंकि उन्होंने विद्वानों के साथ बैठकर *श्रीमद्भागवत* का अध्ययन करने के लिए सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण कर लिया।

আর দিন গৌড়েশ্বর, সঙ্গে এক-জন ।
আচম্বিতে গোসাঞি-সভাতে কৈল আগমন ॥ ১৮॥

आर दिन गौड़ेश्वर, सङ्गे एक-जन ।
आचम्बिते गोसाञि-सभाते कैल आगमन ॥ १८॥

आर दिन—एक दिन; **गौड़ेश्वर**—बंगाल का नवाब; **सङ्गे**—के साथ; **एक-जन**—एक अन्य व्यक्ति; **आचम्बिते**—अचानक; **गोसाञि-सभाते**—सनातन गोस्वामी की सभा में; **कैल आगमन**—आ गया।

अनुवाद

एक दिन जब सनातन गोस्वामी विद्वान ब्राह्मणों की सभा में श्रीमद्भागवत का अध्ययन कर रहे थे, तब बंगाल का नवाब तथा एक अन्य व्यक्ति सहसा वहाँ आ गये।

तात्पर्य

बंगाल के नवाब (हुसैन शाह) का पूरा नाम अलाउद्दीन सैयद हुसेन साह सेरिफ मक्का था, जिसने तेईस वर्षों तक, १४२०-१४४३ शकाब्द (१४९८-१५२१ ई.) तक बंगाल में राज्य किया। सनातन गोस्वामी १४२४ सम्वत् (१५०२ ई.) में *श्रीमद्भागवत* का अध्ययन विद्वानों के साथ बैठकर कर रहे थे।

पाञ्साह देखिया सबे सम्भ्रमे उठिला ।
सम्भ्रमे आसन दिया राजारे बसाइला ॥१९॥

पात्साह देखिया सबे सम्भ्रमे उठिला ।
सम्भ्रमे आसन दिया राजारे वसाइला ॥१९॥

पात्साह देखिया—नवाब को देखकर; **सबे**—वे सब; **सम्भ्रमे**—अत्यन्त आदरपूर्वक; **उठिला**—उठ खड़े हुए; **सम्भ्रमे**—अत्यन्त आदर सहित; **आसन दिया**—आसन देकर; **राजारे**—नवाब को; **वसाइला**—बैठाया।

अनुवाद

ज्योंही सभी ब्राह्मणों तथा सनातन गोस्वामी ने नवाब को आते देखा, वे सभी खड़े हो गये और उन्होंने आदरपूर्वक उसे बैठने के लिए आसन दिया।

तात्पर्य

यद्यपि नवाब हुसेन शाह म्लेच्छ-यवन था, फिर भी वह देश का शासक था और विद्वानों तथा सनातन गोस्वामी ने राजा या शासक जैसा उसका सम्मान किया। जब कोई व्यक्ति किसी उच्च प्रशासक पद को प्राप्त कर लेता है, तब यह मान लेना चाहिए कि उसे भगवत्कृपा प्राप्त हुई है। *भगवद्गीता* (१०.४१) में भगवान् कृष्ण ने कहा है :

यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तद् तद् एवावगच्छत्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥

"जान लो कि सारी सुन्दर, भव्य तथा शक्तिशाली वस्तुएँ मेरे तेज के स्फुलिंग मात्र से उत्पन्न होती हैं।"

जब भी हम कोई महत्त्वपूर्ण वस्तु देखते हैं, तब हमें उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्ति का अंश मान लेना चाहिए। *विभूतिमत्-सत्त्वम्* अर्थात् शक्तिशाली व्यक्ति वह है, जिसे भगवत्कृपा प्राप्त है या भगवान् से कुछ शक्ति प्राप्त हो चुकी हो। *भगवद्गीता* (७.१०) में कृष्ण कहते हैं—*तेजस्तेजस्विनामहम्*—"मैं शक्तिमान की शक्ति हूँ।" विद्वान ब्राह्मणों ने नवाब हुसैन शाह के प्रति आदर प्रदर्शित किया, क्योंकि वह कृष्ण की शक्ति के एक अंश का प्रतिनिधित्व करता था।

রাজা কহে,—তোমার স্থানে বৈদ্য পাঠাইলুঁ ।
বৈদ্য কহে,—ব্যাধি নাহি, সুস্থ যে দেখিলুঁ ॥২০॥

राजा कहे,—तोमार स्थाने वैद्य पाठाइलुँ ।
वैद्य कहे,—व्याधि नाहि, सुस्थ ये देखिलुँ ॥ २० ॥

राजा कहे—नवाब ने कहा; **तोमार स्थाने**—तुम्हारे पास; **वैद्य**—एक वैद्य; **पाठाइलुँ**—मैंने भेजा; **वैद्य कहे**—वैद्य ने कहा; **व्याधि नाहि**—कोई रोग नहीं है; **सुस्थ**—पूर्णतया स्वस्थ; **ये**—यह; **देखिलुँ**—मैंने देखा है।

अनुवाद

नवाब ने कहा, "मैंने तुम्हारे पास मेरा वैद्य भेजा था। उसने सूचना दी है कि तुम्हें कोई रोग नहीं है। उसके विचार से तुम पूर्ण स्वस्थ हो।

আমার যে কিছু কার্য, সব তোমা লঞা ।
কার্য ছাড়ি' রহিলা তুমি ঘরেতে বসিয়া ॥২১॥

आमार ये किछु कार्य्य, सब तोमा लञा ।
कार्य्य छाड़ि' रहिला तुमि घरेते वसिया ॥ २१ ॥

आमार—मेरा; **ये किछु**—जो कुछ; **कार्य्य**—कार्य; **सब**—प्रत्येक; **तोमा**—तुम; **लञा**—

के साथ; **कार्य्य छाड़ि'**—अपना कर्तव्य छोड़कर; **रहिला**—रहे; **तुमि**—तुम; **घरेते**—घर पर; **वसिया**—बैठे।

अनुवाद

"मैं अनेकानेक कार्यों को पूरा करने के लिए तुम पर निर्भर हूँ, किन्तु तुम हो कि अपना सरकारी काम-काज छोड़कर घर पर बैठे रहते हो।

मोर यत कार्य-काम, सब कैला नाश ।
कि तोमार हृदये आछे, कह मोर पाश ॥२२॥
मोर यत कार्य्य-काम, सब कैला नाश ।
कि तोमार हृदये आछे, कह मोर पाश ॥ २२ ॥

मोर—मेरा; **यत**—सब; **कार्य्य-काम**—नियत कार्य; **सब**—सब; **कैला नाश**—तुमने बिगाड़ दिया है; **कि**—क्या; **तोमार**—तुम्हारे; **हृदये**—हृदय में; **आछे**—है; **कह**—कृपया बताओ; **मोर पाश**—मुझे।

अनुवाद

"तुमने मेरा सारा कामकाज बिगाड़ दिया है। आखिर तुम चाहते क्या हो? कृपया मुझसे साफ साफ कहो।"

सनातन कहे,—नहे आमा हैते काम ।
आर एक-जन दिया कर समाधान ॥२३॥
सनातन कहे,—नहे आमा हैते काम ।
आर एक-जन दिया कर समाधान ॥ २३ ॥

सनातन कहे—सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया; **नहे**—नहीं; **आमा**—मुझे; **हैते**—से; **काम**—कामकाज; **आर एक-जन**—कोई दूसरे; **दिया**—के द्वारा; **कर समाधान**—प्रबन्ध करो।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, "अब आप मुझसे किसी प्रकार के कार्य की आशा न करें। कृपा करके किसी दूसरे व्यक्ति को ढूँढ लें, जो आपकी व्यवस्था देख सके।"

তবে ক্রুদ্ধ হঞা রাজা কহে আর-বার ।
তোমার 'বড় ভাই' করে দস্যু-ব্যবহার ॥২৪॥

तबे क्रुद्ध हञा राजा कहे आर-बार ।
तोमार 'बड़ भाइ' करे दस्यु-व्यवहार ॥ २४॥

तबे—उस समय; **क्रुद्ध हञा**—क्रुद्ध होकर; **राजा कहे**—नवाब ने कहा; **आर-बार**—दूसरी बार; **तोमार बड़ भाइ**—तुम्हारा बड़ा भाई; **करे**—करता है; **दस्यु-व्यवहार**—लुटेरे का काम।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी से नाराज होकर नवाब ने कहा, "तुम्हारा बड़ा भाई लुटेरे जैसा व्यवहार कर रहा है।

জীব-বহু মারি' কৈল চাক্লা সব নাশ ।
এথা তুমি কৈলা মোর সর্ব কার্য নাশ ॥২৫॥

जीव-बहु मारि' कैल चाक्ला सब नाश ।
एथा तुमि कैला मोर सर्व कार्य्य नाश ॥ २५॥

जीव—जीव; **बहु**—बहुत; **मारि'**—मारकर; **कैल**—किया है; **चाक्ला**—बंगाल का राज्य (प्रान्त); **सब**—सब; **नाश**—नाश; **एथा**—यहाँ; **तुमि**—तुमने; **कैला**—किया; **मोर**—मेरा; **सर्व**—सब; **कार्य्य**—कार्य; **नाश**—नष्ट।

अनुवाद

"तुम्हारे बड़े भाई ने अनेक जीवों का वध करके समूचे बंगाल को नष्ट कर दिया है। अब तुम मेरी सारी योजनाओं को नष्ट कर रहे हो।"

সনাতন কহে,—তুমি স্বতন্ত্র গৌড়েশ্বর ।
যে যেই দোষ করে, দেহ' তার ফল ॥২৬॥

सनातन कहे,—तुमि स्वतन्त्र गौड़ेश्वर ।
ये येइ दोष करे, देह' तार फल ॥ २६॥

सनातन कहे—सनातन गोस्वामी ने कहा; **तुमि**—आप; **स्वतन्त्र**—स्वतन्त्र; **गौड़-ईश्वर**—बंगाल के शासक; **ये येइ**—जो कुछ; **दोष**—दोष; **करे**—कोई करता है; **देह'**—तुम देते हो; **तार फल**—उसका फल (उसकी सजा)।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने कहा, "आप बंगाल के सर्वोच्च शासक हैं और पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। जब भी कोई व्यक्ति त्रुटि करता है, आप उसे उसी के हिसाब से दण्ड देते हैं।"

এত শুনি' গৌড়েশ্বর উঠি' ঘরে গেলা ।
পলাইব বলি' সনাতনেরে বান্ধিলা ॥২৭॥

एत शुनि' गौड़ेश्वर उठि' घरे गेला ।
पलाइब बलि' सनातनेरे बान्धिला ॥ २७॥

एत शुनि'—यह सुनकर; **गौड़-ईश्वर**—बंगाल का नवाब; **उठि'**—उठकर; **घरे गेला**—घर लौट गया; **पलाइब**—मैं भाग जाऊँगा; **बलि'**—इस कारण; **सनातनेरे बान्धिला**—उसने सनातन को कैद कर लिया।

अनुवाद

यह सुनकर बंगाल का नवाब उठ खड़ा हुआ और वह अपने घर लौट गया। उसने सनातन गोस्वामी को बन्दी बनाये जाने का आदेश दिया, जिससे वे कहीं जा न सकें।

तात्पर्य

कहा जाता है कि बंगाल के नवाब तथा सनातन गोस्वामी के सम्बन्ध में बड़ी घनिष्ठता थी। नवाब सनातन गोस्वामी को अपना छोटा भाई मानता था; अत: जब सनातन गोस्वामी ने त्याग-पत्र देने की प्रबल इच्छा व्यक्त की, तो नवाब ने पारिवारिक स्नेह के कारण कहा, "मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ, किन्तु राज्य की व्यवस्था मैं नहीं देखता हूँ। मेरा एकमात्र कार्य है, अपने सैनिकों के साथ अन्य राज्यों पर आक्रमण करना तथा लुटेरे के समान सर्वत्र लड़ना। चूँकि मैं मांसाहारी (यवन) हूँ, इसलिए मैं सभी तरह के जीवों का शिकार करने का आदी हूँ। इस तरह मैं बंगाल के सभी प्रकार के जीवों का नाश कर रहा हूँ। इस तरह मार-काट में लगे रहकर मैं आशा करता हूँ कि तुम राज्य का शासन चलाओगे। चूँकि मैं, तुम्हारा बड़ा भाई, ऐसे विध्वंसक कार्य में लगा हूँ, अत: तुम्हें मेरे छोटे भाई की तरह राज्य की व्यवस्था देखनी चाहिए। यदि तुम ऐसा

नहीं करोगे, तो फिर काम कैसे चलेगा?" यह बात पारिवारिक सम्बन्ध पर आधारित थी और सनातन गोस्वामी ने भी घनिष्ठता और हँसी में उत्तर दिया। उन्होंने नवाब से कहा, "मेरे प्रिय भाई, आप बंगाल के स्वतन्त्र शासक हैं। आप जैसा भी चाहें कर सकते हैं और यदि कोई गलती करता है, तो आप उसे इच्छानुसार दण्ड दे सकते हैं।" दूसरे शब्दों में, सनातन गोस्वामी यह कह रहे थे कि चूँकि नवाब एक लुटेरे की तरह काम करने का आदी था, अत: उसके जो मन भावे, कार्यवाही करे। सनातन गोस्वामी अपना कर्तव्य निभाने में अधिक उत्साह नहीं दिखा रहे थे, अत: नवाब को उन्हें नौकरी से निकाल देना चाहिए। नवाब सनातन गोस्वामी के कथन के भावार्थ को समझ गया था, अत: वह क्रुद्ध होकर वहाँ से चला गया और उसने सनातन गोस्वामी को बन्दी बनाने का आदेश दे दिया।

হেন-কালে গেল রাজা উড়িয়া মারিতে ।
সনাতনে কহে,—তুমি চল মোর সাথে ॥২৮॥

হেন-কালে গেল রাজা উড়িয়া মারিতে ।
সনাতনে কহে,—তুমি চল মোর সাথে ॥ ২৮ ॥

হেন-কালে—इस समय; **গেল**—गया; **রাজা**—नवाब; **উড়িয়া মারিতে**—उड़ीसा राज्य (प्रान्त) पर आक्रमण करने के लिए; **সনাতনে কহে**—उसने सनातन गोस्वामी को कहा; **তুমি চল**—तुम आओ; **মোর সাথে**—मेरे साथ।

अनुवाद

उस समय नवाब उड़ीसा प्रान्त पर आक्रमण करने जा रहा था और उसने सनातन गोस्वामी से कहा, "तुम मेरे साथ चलो।"

तात्पर्य

हुसेन शाह ने १४२४ शकाब्द (१५०२ ई.) में उड़ीसा प्रान्त पर आक्रमण किया। उस समय उसने उड़ीसा के सामन्त राजकुमारों को जीत लिया।

তেঁহো কহে,—যাবে তুমি দেবতায় দুঃখ দিতে ।
মোর শক্তি নাহি, তোমার সঙ্গে যাইতে ॥২৯॥

तेंहो कहे,—याबे तुमि देवताय दुःख दिते ।
मोर शक्ति नाहि, तोमार सङ्गे याइते ॥ २९ ॥

तेंहो कहे—सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया; **याबे**—जाओगे; **तुमि**—आप; **देवताय**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को; **दुःख दिते**—दुःख देने; **मोर शक्ति**—मेरी शक्ति; **नाहि**—नहीं है; **तोमार सङ्गे**—आपके साथ; **याइते**—जाने की।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, "आप तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को कष्ट देने उड़ीसा जा रहे हैं। इसीलिए मैं आपके साथ जाने में अशक्त हूँ।"

তবে তাঁরে বান্ধি' রাখি' করিলা গমন ।
এথা নীলাচল হৈতে প্রভু চলিলা বৃন্দাবন ॥৩০॥

তবে তাঁরে বান্ধি' রাখি' করিলা গমন ।
এথা নীলাচল হৈতে প্রভু চলিলা বৃন্দাবন ॥ ३० ॥

তবে—तत्पश्चात्; **তাঁরে**—उनको; **বান্ধি'**—कैद करके; **রাখি'**—रखकर; **করিলা গমন**—वह चला गया; **এথা**—इस समय; **নীলাচল হৈতে**—जगन्नाथ पुरी से; **প্রভু**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **চলিলা বৃন্দাবন**—वृन्दावन के लिए रवाना हो गये।

अनुवाद

नवाब ने फिर से सनातन गोस्वामी को बन्दी बनाया और जेल में डाल दिया। उस समय श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी से वृन्दावन के लिए चल पड़े।

তবে সেই দুই চর রূপ-ঠাঞি আইল ।
'বৃন্দাবন চলিলা প্রভু'—আসিয়া কহিল ॥৩১॥

তবে সেই দুই চর রূপ-ঠাঞি আইল ।
'বৃন্দাবন চলিলা প্রভু'—আসিয়া কহিল ॥ ३१ ॥

তবে—उस समय; **সেই**—वे; **দুই**—दोनों; **চর**—सन्देशवाहक; **রূপ-ঠাঞি**—रूप गोस्वामी की उपस्थिति में; **আইল**—लौट आये; **বৃন্দাবন চলিলা প্রভু**—श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन चले गये हैं; **আসিয়া**—आकर; **কহিল**—बताया।

अनुवाद

दो व्यक्तियों ने, जो महाप्रभु के प्रस्थान का पता लगाने जगन्नाथ पुरी गये थे, लौटकर रूप गोस्वामी को सूचित किया कि महाप्रभु पहले ही वृन्दावन के लिए चल चुके हैं।

शुनिया श्री-रूप लिखिल सनातन-ठाञि ।
'वृन्दावन चलिला श्री-चैतन्य-गोसाञि ॥३२॥
शुनिया श्री-रूप लिखिल सनातन-ठाञि ।
'वृन्दावन चलिला श्री-चैतन्य-गोसाञि ॥३२॥

शुनिया—यह सुनकर; **श्री-रूप**—श्री रूप गोस्वामी ने; **लिखिल**—लिखा; **सनातन-ठाञि**—सनातन गोस्वामी को; **वृन्दावन**—वृन्दावन; **चलिला**—चले गये हैं; **श्री-चैतन्य-गोसाञि**—श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

इन दोनों सन्देशवाहकों से यह सन्देश पाकर रूप गोस्वामी ने तुरन्त सनातन गोस्वामी को यह पत्र लिखा कि श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन के लिए चल चुके हैं।

आमि-दुई-भाई चलिलाङ ताँहारे मिलिते ।
तुमि यैछे तैछे छुटि' आइस ताहाँ हैते ॥३३॥
आमि-दुइ-भाइ चलिलाङ ताँहारे मिलिते ।
तुमि य्रैछे तैछे छुटि' आइस ताहाँ हैते ॥३३॥

आमि-दुइ-भाइ—हम दोनों भाई; **चलिलाङ**—चले गये हैं; **ताँहारे मिलिते**—उन्हें मिलने के लिए; **तुमि**—आप; **य्रैछे तैछे**—जैसे तैसे; **छुटि'**—छूटकर; **आइस**—आओ; **ताहाँ हैते**—वहाँ से।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने सनातन गोस्वामी को अपने पत्र में लिखा, "हम दोनों भाई श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने के लिए प्रस्थान करने वाले हैं। तुम भी किसी तरह छूटकर हमसे मिलो।"

तात्पर्य

यहाँ पर जिन दो भाइयों का उल्लेख है, वे श्री रूप गोस्वामी स्वयं तथा उनका छोटा भाई अनुपम मल्लिक हैं। रूप गोस्वामी सनातन गोस्वामी को यह सूचना दे रहे थे कि वे उन दोनों के साथ आकर मिलें।

दश-सहस्र मुद्रा तथा आछे मुदि-स्थाने ।
ताहा दिया कर शीघ्र आत्म-विमोचने ॥ ७४ ॥

दश-सहस्र मुद्रा तथा आछे मुदि-स्थाने ।
ताहा दिया कर शीघ्र आत्म-विमोचने ॥ ३४ ॥

दश-सहस्र मुद्रा—दस हजार मुद्राएँ; **तथा**—वहाँ; **आछे**—हैं; **मुदि-स्थाने**—दुकानदार के पास; **ताहा दिया**—इस राशि से; **कर**—करो; **शीघ्र**—शीघ्र; **आत्म-विमोचने**—अपनी कैद से छूट जाओ।

अनुवाद

रूप गोस्वामी ने श्रील सनातन गोस्वामी को यह भी सूचित किया, "मैं वहाँ एक बनिये के पास दस हजार मुद्राएँ छोड़ आया हूँ। तुम उस धन का उपयोग अपने आपको जेल से छुड़ाने में करो।

यैछे तैछे छुटि' तुमि आइस वृन्दावन' ।
एत लिखि' दुई-भाई करिला गमन ॥ ७५ ॥

ग्रैछे तैछे छुटि' तुमि आइस वृन्दावन' ।
एत लिखि' दुइ-भाइ करिला गमन ॥ ३५ ॥

ग्रैछे तैछे—जैसे तैसे; **छुटि'**—छूटकर; **तुमि**—तुम; **आइस**—आओ; **वृन्दावन**—वृन्दावन; **एत लिखि'**—यह लिखकर; **दुइ-भाइ**—दोनों भाई रूप गोस्वामी और उनका छोटा भाई अनुपम; **करिला गमन**—चले गये।

अनुवाद

"किसी तरह से छूटकर वृन्दावन आओ।" यह लिखकर दोनों भाई (रूप गोस्वामी तथा अनुपम) श्री चैतन्य महाप्रभु को मिलने चले गये।

অনুপম মল্লিক, তাঁর নাম——'শ্রী-বল্লভ' ।
রূপ-গোসাঞির ছোট-ভাই——পরম-বৈষ্ণব ॥৩৬॥

अनुपम मल्लिक, ताँर नाम——'श्री-वल्लभ' ।
रूप-गोसाञिर छोट-भाइ——परम-वैष्णव ॥ ३६ ॥

अनुपम मल्लिक—अनुपम मल्लिक; **ताँर नाम**—उनका नाम; **श्री-वल्लभ**—श्री वल्लभ; **रूप-गोसाञिर**—रूप गोस्वामी का; **छोट-भाइ**—छोटा भाई; **परम-वैष्णव**—महान् भक्त।

अनुवाद

रूप गोस्वामी का छोटा भाई महान् भक्त था, जिसका सच्चा नाम श्री वल्लभ था; किन्तु उसका नाम अनुपम मल्लिक रख दिया गया था।

তাঁহা লঞা রূপ-গোসাঞি প্রয়াগে আইলা ।
মহাপ্রভু তাহাঁ শুনি' আনন্দিত হৈলা ॥৩৭॥

ताँहा लञा रूप-गोसाञि प्रयागे आइला ।
महाप्रभु ताहाँ शुनि' आनन्दित हैला ॥ ३७ ॥

ताँहा लञा—उनको साथ लेकर; **रूप गोसाञि**—श्री रूप गोस्वामी; **प्रयागे**—प्रयाग में; **आइला**—आये; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **ताहाँ**—वहाँ; **शुनि'**—सुनकर; **आनन्दित हैला**—बहुत प्रसन्न हुए।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी तथा अनुपम मल्लिक प्रयाग गये और यह समाचार सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हुए कि श्री चैतन्य महाप्रभु वहीं पर हैं।

প্রভু চলিয়াছেন বিন্দু-মাধব-দরশনে ।
লক্ষ লক্ষ লোক আইসে প্রভুর মিলনে ॥৩৮॥

प्रभु चलियाछेन बिन्दु-माधव-दरशने ।
लक्ष लक्ष लोक आइसे प्रभुर मिलने ॥ ३८ ॥

प्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु; **चलियाछेन**—जा रहे थे; **बिन्दु-माधव-दरशने**—भगवान् बिन्दुमाधव के दर्शन करने; **लक्ष लक्ष लोक**—कई लाख लोग; **आइसे**—आये; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; **मिलने**—मिलने के लिए।

अनुवाद

प्रयाग में श्री चैतन्य महाप्रभु बिन्दुमाधव मन्दिर में दर्शन करने गये और लाखों लोग उनसे मिलने मात्र के लिए उनके पीछे पीछे चल रहे थे।

केह कान्दे, केह हासे, केह नाचे, गाय ।
'कृष्ण' 'कृष्ण' बलि' केह गड़ागड़ि याय ॥ ३९॥

केह कान्दे, केह हासे, केह नाचे, गाय ।
'कृष्ण' 'कृष्ण' बलि' केह गड़ागड़ि याय ॥ ३९॥

केह कान्दे—कुछ रो रहे थे; **केह हासे**—कुछ हँस रहे थे; **केह नाचे**—कुछ नाच रहे थे; **गाय**—कुछ कीर्तन कर रहे थे; **कृष्ण कृष्ण बलि'**—"कृष्ण कृष्ण" कहकर; **केह**—कुछ; **गड़ागड़ि याय**—धरती पर लोट रहे थे।

अनुवाद

महाप्रभु के पीछे चलने वालों में से कुछ लोग रो रहे थे, कुछ हँस रहे थे, कुछ नाच और गा रहे थे। उनमें से कुछ "कृष्ण! कृष्ण!" पुकारकर भूमि पर लोट रहे थे।

गङ्गा-यमुना प्रयाग नारिल डुबाइते ।
प्रभु डुबाइल कृष्ण-प्रेमेर वन्याते ॥ ४०॥

गङ्गा-यमुना प्रयाग नारिल डुबाइते ।
प्रभु डुबाइल कृष्ण-प्रेमेर वन्याते ॥ ४०॥

गङ्गा-यमुना—गंगा यमुना नदियाँ; **प्रयाग**—प्रयाग; **नारिल**—सक्षम नहीं थे; **डुबाइते**—बाढ़ लाने के लिए; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **डुबाइल**—डूबा दिया; **कृष्ण-प्रेमेर**—कृष्ण के प्रेमावेश की; **वन्याते**—बाढ़ में।

अनुवाद

प्रयाग, गंगा तथा यमुना—इन दो नदियों के संगम पर स्थित है। यद्यपि ये नदियाँ अपने जल से प्रयाग को जलमग्न नहीं कर सकी थीं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण-प्रेम की लहरों से पूरे भूभाग को आप्लावित कर दिया।

ভিড় দেখি' দুই ভাই রহিলা নির্জনে ।
প্রভুর আবেশ হৈল মাধব-দরশনে ॥ ৪১ ॥

ভিড় দেখি' দুই ভাই রহিলা নির্জনে ।
প্রভুর আবেশ হৈল মাধব-দরশনে ॥ ৪১ ॥

ভিড় দেখি'—ভীড় দেখকर; **দুই ভাই**—দোনों भाई; **রহিলা**—रह गये; **নির্জনে**—एकान्त स्थान में; **প্রভুর**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **আবেশ**—आवेश; **হৈল**—हो आया; **মাধব-দরশনে**—बिन्दु माधव विग्रह के दर्शन करने से।

অনুবাদ

बड़ी भीड़ देखकर दोनों भाई एकान्त स्थान पर खड़े रहे। उन्होंने देखा कि श्री चैतन्य महाप्रभु बिन्दु माधव का दर्शन पाकर प्रेमाविष्ट हो गये।

প্রেমাবেশে নাচে প্রভু হরি-ধ্বনি করি' ।
ঊর্ধ্ব-বাহু করি' বলে—বল 'হরি' 'হরি' ॥ ৪২ ॥

প্রেমাবেশে নাচে প্রভু হরি-ধ্বনি করি' ।
ঊর্ধ্ব-বাহু করি' বলে—বল 'হরি' 'হরি' ॥ ৪২ ॥

প্রেম-আবেশে—प्रेमावेश में; **নাচে**—नृत्य किया; **প্রভু**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **হরি-ধ্বনি করি'**—भगवान् हरि का पावन नाम बोलकर; **ঊর্ধ্ব**—ऊपर; **বাহু**—दोनों बाजू; **করি'**—करके; **বলে**—बोले; **বল হরি হরি**—"हरि, हरि" बोलो।

অনুবাদ

महाप्रभु हरि नाम का उच्च स्वर से कीतर्न कर रहे थे। प्रेमावेश में नाचते हुए और अपनी भुजाएँ उठाते हुए उन्होंने हर एक से "हरि! हरि!" बोलने के लिए कहा।

প্রভুর মহিমা দেখি' লোকে চমৎকার ।
প্রয়াগে প্রভুর লীলা নারি বর্ণিবার ॥ ৪৩ ॥

প্রভুর মহিমা দেখি' লোকে চমৎকার ।
প্রয়াগে প্রভুর লীলা নারি বর্ণিবার ॥ ৪৩ ॥

प्रभुर—श्री चैतन्य महाप्रभु की; **महिमा**—महिमा; **देखि'**—देखकर; **लोके**—सब लोगों में; **चमत्कार**—विस्मय; **प्रयागे**—प्रयाग में; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु की; **लीला**—लीलाएँ; **नारि**—मैं सक्षम नहीं हूँ; **वर्णिबार**—वर्णन करने में।

अनुवाद

हर व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु की महानता देखकर अत्यन्त विस्मित था। मैं महाप्रभु की प्रयाग-लीलाओं का ठीक-ठीक वर्णन नहीं कर सकता।

दाक्षिणात्य-विप्र-सने आछे परिचय ।
सेइ विप्र निमन्त्रिया निल निजालय ॥ ४४ ॥

दाक्षिणात्य-विप्र-सने आछे परिचय ।
सेइ विप्र निमन्त्रिया निल निजालय ॥ ४४ ॥

दाक्षिणात्य—दक्षिण के; **विप्र-सने**—एक ब्राह्मण के साथ; **आछे**—था; **परिचय**—परिचय; **सेइ**—वह; **विप्र**—ब्राह्मण; **निमन्त्रिया**—निमन्त्रण देकर; **निल**—लाया; **निज-आलय**—अपने घर पर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की दक्षिण भारत के एक ब्राह्मण से जान-पहचान हो गई थी और उस ब्राह्मण ने उन्हें भोजन के लिए निमन्त्रित किया। वह उन्हें अपने घर ले गया।

विप्र-गृहे आसि' प्रभु निभृते वसिला ।
श्री-रूप-वल्लभ दुँहे आसिया मिलिला ॥ ४५ ॥

विप्र-गृहे आसि' प्रभु निभृते वसिला ।
श्री-रूप-वल्लभ दुँहे आसिया मिलिला ॥ ४५ ॥

विप्र-गृहे—उस ब्राह्मण के घर पर; **आसि'**—आकर; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **निभृते**—एक एकान्त स्थान पर; **वसिला**—बैठ गये; **श्री-रूप-वल्लभ**—रूप गोस्वामी और श्री वल्लभ दोनों भाई; **दुँहे**—वे दोनों; **आसिया**—आकर; **मिलिला**—उनको मिले।

अनुवाद

जब महाप्रभु उस दाक्षिणात्य ब्राह्मण के घर एकान्त में बैठे थे, तब

रूप गोस्वामी तथा श्री वल्लभ (अनुपम मल्लिक) उनसे भेंट करने वहाँ आये।

दुई-गुच्छ तृण दुँहे दशने धरिया ।
प्रभु देखि' दूरे पड़े दण्डवत् हञा ॥ ४६॥
दुइ-गुच्छ तृण दुँहे दशने धरिया ।
प्रभु देखि' दूरे पड़े दण्डवत् हञा ॥ ४६॥

दुइ-गुच्छ—दो गुच्छे; **तृण**—तिनके; **दुँहे**—वे दोनों; **दशने धरिया**—दांतों में दबाकर; **प्रभु देखि'**—महाप्रभु को देखकर; **दूरे**—दूर से; **पड़े**—गिर गये; **दण्ड-वत्**—दण्डवत्; **हञा**—होकर।

अनुवाद

दूर से महाप्रभु को देखकर दोनों भाइयों ने अपने दाँतों में तिनकों के दो गुच्छे दबा लिए और उन्हें नमस्कार करने के लिए भूमि पर दण्ड के समान गिर पड़े।

नाना श्लोक पड़ि' उठे, पड़े बार बार ।
प्रभु देखि' प्रेमावेश हइल दुँहार ॥ ४७॥
नाना श्लोक पड़ि' उठे, पड़े बार बार ।
प्रभु देखि' प्रेमावेश हइल दुँहार ॥ ४७॥

नाना—अनेक; **श्लोक**—श्लोक; **पड़ि'**—पढ़कर; **उठे**—उठते; **पड़े**—गिरते; **बार बार**—बारम्बार; **प्रभु देखि'**—महाप्रभु को देखकर; **प्रेम-आवेश**—प्रेमावेश; **हइल**—हो आया; **दुँहार**—उन दोनों में।

अनुवाद

दोनों भाई प्रेमाविष्ट हो गये और अनेक संस्कृत श्लोक पढ़ते हुए बारम्बार उठते और गिरते।

श्री-रूपे देखिया प्रभुर प्रसन्न हैल मन ।
'उठ, उठ, रूप, आइस', बलिला वचन ॥ ४८॥

श्री-रूपे देखिया प्रभुर प्रसन्न हैल मन ।
'उठ, उठ, रूप, आइस', बलिला वचन ॥ ४८ ॥

श्री-रूपे देखिया—श्रील रूप गोस्वामी को देखकर; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **प्रसन्न**—अत्यन्त प्रसन्न; **हैल**—हो उठा; **मन**—मन; **उठ**—कृपया खड़े हो जाओ; **उठ**—कृपया खड़े हो जाओ; **रूप**—मेरे प्रिय रूप; **आइस**—आओ; **बलिला**—उन्होंने कहे; **वचन**—ये शब्द।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु श्रील रूप गोस्वामी को देखकर अत्यधिक प्रसन्न थे। उन्होंने उनसे कहा, "उठो! उठो! हे प्रिय रूप! मेरे पास आओ।"

कृष्णेर करुणा किछु ना याय वर्णने ।
विषय-कूप हैते काड़िल तोमा दुँइ-जने ॥ ४९ ॥
कृष्णेर करुणा किछु ना य्राय वर्णने ।
विषय-कूप हैते काड़िल तोमा दुइ-जने ॥ ४९ ॥

कृष्णेर—भगवान् कृष्ण की; **करुणा**—दया का; **किछु**—कोई भी; **ना**—नहीं; **य्राय**—सम्भव है; **वर्णने**—वर्णन करना; **विषय-कूप हैते**—भौतिक भोग के कूप से निकालकर; **काड़िल**—उद्धार किया; **तोमा**—तुम; **दुइ-जने**—दोनों का।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "कृष्ण की कृपा का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है, क्योंकि उन्होंने तुम दोनों को भौतिक भोग के कुएँ से बाहर निकाल लिया है।"

न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्व-पचः प्रियः ।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम् ॥ ५० ॥
न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्व-पचः प्रियः ।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो य्रथा ह्यहम् ॥ ५० ॥

न—नहीं; **मे**—मेरे; **अभक्तः**—शुद्ध भक्ति रहित; **चतुः-वेदी**—चारों वेदों का ज्ञाता; **मत्-भक्तः**—मेरा भक्त; **श्व-पचः**—चण्डाल (कुत्ता खाने वाला) कुल से भी; **प्रियः**—अत्यन्त प्रिय है; **तस्मै**—उसको (शुद्ध भक्त, भले ही नीच कुल में जन्मा हो); **देयम्**—दिया जाना

चाहिए; **ततः**—उसके; **ग्राह्यम्**—स्वीकार किया जाना चाहिए (भोजन का शेष); **सः**—वह व्यक्ति; **च**—भी; **पूज्यः**—पूज्य; **यथा**—उतना ही जितना; **हि**—निस्सन्देह; **अहम्**—मैं।

अनुवाद

"(भगवान् कृष्ण ने कहा :) 'कोई भले ही संस्कृत वैदिक साहित्य का बहुत बड़ा विद्वान क्यों न हो, यदि उसकी भक्ति शुद्ध नहीं है, तो वह मेरा भक्त नहीं माना जा सकता। भले ही कोई व्यक्ति चण्डाल परिवार में जन्मा हो, वह भी मुझे अत्यन्त प्रिय है, यदि वह मेरा शुद्ध भक्त है, जिसमें सकाम कर्म या मानसिक तर्कवितर्क को भोगने की कोई इच्छा नहीं है। उसे सभी प्रकार से सम्मान दिया जाना चाहिए और वह जो कुछ भी दे, उसे स्वीकार करना चाहिए। ऐसा भक्त मेरे ही समान पूजनीय है।'"

तात्पर्य

यह श्लोक सनातन गोस्वामी कृत *हरिभक्ति-विलास* (१०.१२७) से लिया गया है।

এই শ্লোক পড়ি' দুঁহারে কৈলা আলিঙ্গন ।
কৃপাতে দুঁহার মাথায় ধরিলা চরণ ॥৫১॥

एइ श्लोक पड़ि' दुँहारे कैला आलिङ्गन ।
कृपाते दुँहार माथाय धरिला चरण ॥५१॥

एइ श्लोक—यह श्लोक; **पड़ि'**—पढ़कर; **दुँहारे**—दोनों भाइयों का; **कैला आलिङ्गन**—आलिंगन किया; **कृपाते**—अहैतकी कृपा से; **दुँहार**—उन दोनों के; **माथाय**—मस्तकों पर; **धरिला**—रखे; **चरण**—अपने चरण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह श्लोक पढ़कर दोनों भाइयों का आलिंगन किया और अहैतुकी कृपा करके उनके सिरों पर अपने पाँव रखे।

প্রভু-কৃপা পাঞা দুঁহে দুই হাত যুড়ি' ।
দীন হঞা স্তুতি করে বিনয় আচরি' ॥৫২॥

प्रभु-कृपा पाञा दुँहे दुइ हात युड़ि' ।
दीन हञा स्तुति करे विनय आचरि' ॥५२॥

प्रभु-कृपा—महाप्रभु की कृपा; **पाञा**—पाकर; **दुँहे**—वे दोनों; **दुइ**—दोनों; **हात**—हाथ; **मुड़ि'**—जोड़कर; **दीन हञा**—अति विनम्रता से; **स्तुति करे**—प्रार्थना की; **विनय आचरि'**—नम्रतापूर्वक।

अनुवाद

महाप्रभु की अहैतुकी कृपा पाकर दोनों भाइयों ने हाथ जोड़े और अत्यन्त दीन-भाव से महाप्रभु की निम्नलिखित स्तुति की।

नमो महा-वदान्याय कृष्ण-प्रेम-प्रदाय ते ।
कृष्णाय कृष्ण-चैतन्य-नाम्ने गौर-त्विषे नमः ॥५३॥

नमो महा-वदान्याय कृष्ण-प्रेम-प्रदाय ते ।
कृष्णाय कृष्ण-चैतन्य-नाम्ने गौर-त्विषे नमः ॥५३॥

नमः—नमस्कार; **महा-वदान्याय**—अत्यन्त दयालु और कृपामय; **कृष्ण-प्रेम**—कृष्ण-प्रेम; **प्रदाय**—प्रदान करने वाले; **ते**—आपको; **कृष्णाय**—मूल भगवान्; **कृष्ण-चैतन्य-नाम्ने**—कृष्ण चैतन्य नाम वाले; **गौर-त्विषे**—जिनका वर्ण श्रीमती राधारानी के सुनहरे रंग जैसा है; **नमः**—नमस्कार।

अनुवाद

"हे परम दयालु अवतार! आप स्वयं कृष्ण हैं, जो श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए हैं। आपने श्रीमती राधारानी का गौरवर्ण धारण किया है और आप कृष्ण के शुद्ध प्रेम का उदारता से वितरण कर रहे हैं। हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।

योऽज्ञान-मत्तं भुवनं दयालुर्
उल्लाघयन्नप्यकरोत्प्रमत्तम् ।
स्व-प्रेम-सम्पत्सुधयाद्भुतेहं
श्री-कृष्ण-चैतन्यममुं प्रपद्ये ॥५४॥

य्योऽज्ञान-मत्तं भुवनं दयालुर्
उल्लाघयन्नप्यकरोत्प्रमत्तम् ।
स्व-प्रेम-सम्पत्सुधयाद्भुतेहं
श्री-कृष्ण-चैतन्यममुं प्रपद्ये ॥५४॥

यः—वे भगवान् जो; **अज्ञान-मत्तम्**—अज्ञान से उन्मत्त अथवा मूर्खों की तरह कर्म, ज्ञान, योग और मायावादी दर्शन में समय गँवाना; **भुवनम्**—सभी तीन भुवन; **दयालुः**—इतने दयालु; **उल्लाघयन्**—कर्म, ज्ञान और योग जैसी प्रक्रियाओं का तिरस्कार करते हुए; **अपि**—बावजूद; **अकरोत्**—बनाया; **प्रमत्तम्**—उन्मत्त; **स्व-प्रेम-सम्पत्-सुधया**—अपनी निजी भक्ति सेवा के अमृत से, जो आनन्द की अमूल्य निधि है; **अद्भुत-ईहम्**—जिनकी लीलाएँ अद्भुत हैं; **श्री-कृष्ण-चैतन्यम्**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **अमुम्**—उन; **प्रपद्ये**—मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

अनुवाद

"हम उन दयालु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को सादर नमस्कार करते हैं, जिन्होंने अज्ञान से मदोन्मत्त तीनों लोकों को बदल डाला है और उन्हें भगवत्प्रेम के कोष के अमृत से उन्मत्त बनाकर रुग्ण अवस्था से उनकी रक्षा की है। हम उन भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य की शरण ग्रहण करते हैं, जिनके कार्यकलाप अद्भुत हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक *गोविन्द-लीलामृत* (१.२) से लिया गया है।

तबे महाप्रभु तांरे निकटे बसाइला ।
'सनातनेर वार्ता कह'—ताँहारे पूछिला ॥५५॥
तबे महाप्रभु ताँरे निकटे वसाइला ।
'सनातनेर वार्ता कह'—ताँहारे पुछिला ॥५५॥

तबे—तत्पश्चात्; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **ताँरे**—उनको; **निकटे**—अपने निकट; **वसाइला**—बैठाकर; **सनातनेर वार्ता**—सब सनातन गोस्वामी का समाचार; **कह**—कृपया कहो; **ताँहारे**—उनको; **पुछिला**—पूछा।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें अपनी बगल में बैठाया और उनसे पूछा, "सनातन का क्या समाचार है?"

रूप कहेन,—तेंहो बन्दी हय राज-घरे ।
तुमि यदि उद्धार', तबे हइबे उद्धारे ॥५६॥
रूप कहेन,—तेंहो बन्दी हय राज-घरे ।
तुमि यदि उद्धार', तबे हइबे उद्धारे ॥५६॥

रूप कहेन—रूप गोस्वामी ने कहा; **तेंहो**—वह; **बन्दी**—बन्दी बना लिया गया है; **हय**—है; **राज-घरे**—सरकार की कचहरी में; **तुमि**—आप; **यदि**—यदि; **उद्धार'**—कृपा करके बचाते हो; **तबे**—तब; **हइबे**—उसका होगा; **उद्धारे**—बन्धन से छूट जायेगा।

अनुवाद

श्री रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया, "सनातन को हुसेन शाह की सरकार ने अब बन्दी बना लिया है। यदि आप कृपा करके उसे बचायें, तो वह उस बन्धन से छूट सकता है।"

প্রভু কহে,—সনাতনের হঞাছে মোচন ।
অচিরাতামা-সহ হইবে মিলন ॥৫৭॥

प्रभु कहे,—सनातनेर हञाछे मोचन ।
अचिरात् आमा-सह हइबे मिलन ॥५७॥

प्रभु कहे—श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **सनातनेर**—सनातन गोस्वामी की; **हञाछे**—हो गई है; **मोचन**—मुक्ति (कैद से छूट गया है); **अचिरात्**—अति शीघ्र; **आमा-सह**—मेरे साथ; **हइबे मिलन**—मिलन होगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त कहा, "सनातन उसके कारागार से छूट चुका है और वह शीघ्र ही आकर मुझसे मिलेगा।"

মধ্যাহ্ন করিতে বিপ্র প্রভুরে কহিলা ।
রূপ-গোসাঞি সে-দিবস তথাঞি রহিলা ॥৫৮॥

मध्याह्न करिते विप्र प्रभुरे कहिला ।
रूप-गोसाञि से-दिवस तथाञि रहिला ॥५८॥

मध्याह्न करिते—मध्याह्न का भोजन लेने के लिए; **विप्र**—दक्षिण के ब्राह्मण ने; **प्रभुरे**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **कहिला**—निवेदन किया; **रूप-गोसाञि**—रूप गोस्वामी; **से-दिवस**—उस दिन; **तथाञि**—वहीं; **रहिला**—रहे।

अनुवाद

तब ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना की कि वे भोजन ग्रहण करें। उस दिन रूप गोस्वामी भी वहीं रहे।

ভট্টাচার্য দুই ভাইয়ে নিমন্ত্রণ কৈল ।
প্রভুর শেষ প্রসাদ-পাত্র দুই-ভাই পাইল ॥৫৯॥

भट्टाचार्य्य दुइ भाइये निमन्त्रण कैल ।
प्रभुर शेष प्रसाद-पात्र दुइ-भाइ पाइल ॥५९॥

भट्टाचार्य्य—बलभद्र भट्टाचार्य ने; **दुइ भाइये**—दोनों भाइयों को; **निमन्त्रण कैल**—मध्याह्न का भोजन लेने के लिए निमन्त्रण दिया; **प्रभुर शेष प्रसाद-पात्र**—श्री चैतन्य महाप्रभु के भोजन का शेष; **दुइ-भाइ पाइल**—दोनों भाइयों को मिला।

अनुवाद

बलभद्र भट्टाचार्य ने दोनों भाइयों को भी भोजन करने को कहा। उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु की थाल से बचा हुआ भोजन प्रदान किया गया।

ত্রিবেণী-উপর প্রভুর বাসা-ঘর স্থান ।
দুই ভাই বাসা কৈল প্রভু-সন্নিধান ॥৬০॥

त्रिवेणी-उपर प्रभुर वासा-घर स्थान ।
दुइ भाइ वासा कैल प्रभु-सन्निधान ॥६०॥

त्रिवेणी-उपर—यमुना और गंगा के संगम के तट पर; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **वासा-घर**—निवासस्थान; **स्थान**—स्थान; **दुइ भाइ**—दोनों भाइयों ने; **वासा कैल**—निवास किया; **प्रभु-सन्निधान**—श्री चैतन्य महाप्रभु के निकट।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने गंगा तथा यमुना के संगम के निकट त्रिवेणी नामक स्थान में अपना निवासस्थान चुना। रूप गोस्वामी तथा श्री वल्लभ दोनों भाइयों ने महाप्रभु के निकट ही अपना निवासस्थान चुना।

সে-কালে বল্লভ-ভট্ট রহে আড়াইল-গ্রামে ।
মহাপ্রভু আইলা শুনি' আইল তাঁর স্থানে ॥৬১॥

से-काले वल्लभ-भट्ट रहे आड़ाइल-ग्रामे ।
महाप्रभु आइला शुनि' आइल ताँर स्थाने ॥६१॥

से-काले—उस समय; **वल्लभ-भट्ट**—वल्लभ भट; **रहे**—रहते थे; **आड़ाइल-ग्रामे**—

आड़ाइल नामक गाँव में; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **आइला**—आये हैं; **शुनि'**—यह सुनकर; **आइल**—पहुँच गये; **ताँर स्थाने**—उनके स्थान पर।

अनुवाद

उस समय श्री वल्लभ भट्ट आड़ाइल ग्राम में रह रहे थे। जब उन्होंने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु आये हैं, तो वे उनका दर्शन करने उनके स्थान पर गये।

तात्पर्य

वल्लभ भट्ट वैष्णव-दर्शन के महान् विद्वान थे। प्रारम्भ में वे श्री चैतन्य महाप्रभु को बहुत समर्पित थे, किन्तु जब उन्होंने देखा कि महाप्रभु से उन्हें समुचित सम्मान नहीं मिल रहा, तो बाद में वे विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गये और उस सम्प्रदाय के आचार्य बन गये। उनका सम्प्रदाय वल्लभाचार्य सम्प्रदाय के नाम से विख्यात है। इस सम्प्रदाय का गोकुल के निकट वृन्दावन तथा बम्बई में काफी प्रभाव था। वल्लभ भट्ट ने अनेक पुस्तकें लिखीं, जिनमें *श्रीमद्भागवत* की टीका *सुबोधिनी टीका* और *वेदान्त-सूत्र* पर टिप्पणियाँ *अनुभाष्य* के रूप में सम्मिलित हैं। उन्होंने *षोडश-ग्रन्थ* भी लिखा, जिसमें सोलह ग्रन्थों का संकलन है। आड़ाइल ग्राम या अड़ैली ग्राम, जहाँ वे रह रहे थे, गंगा तथा यमुना नदी के संगम के निकट ही यमुना के उस पार प्रयाग से लगभग एक मील दूर था। आज भी वहाँ भगवान् विष्णु का एक मन्दिर है, जो वल्लभ सम्प्रदाय का है।

वल्लभ भट्ट का मूल स्थान दक्षिण भारत में था, जिसे त्रैलंग कहते थे। निडाडाभलु नाम का एक रेलवे स्टेशन है, जिससे सोलह मील दूरी पर कांकडबाड या काकुंरपाढु नामक एक गाँव है। वहाँ पर लक्ष्मण दीक्षित नाम का एक विद्वान ब्राह्मण रहता था। वल्लभ भट्ट उसी के पुत्र थे। आन्ध्र प्रदेश में ब्राह्मण जाति के पाँच अनुभाग हैं—बेल्लनाटी, वेगीनाटी, मुरकिनाटी, तेलगुनाटी तथा काशलनाटी। इन पाँचों ब्राह्मण जातियों में से वल्लभाचार्य का जन्म १४०० शकाब्द (१४७८ ई.) में बेल्लनाटी जाति में हुआ। कुछ लोगों के मतानुसार वल्लभ भट्टाचार्य के पिता ने वल्लभ के जन्म के पहले ही संन्यास ले लिया था, किन्तु वल्लभाचार्य को अपना पुत्र स्वीकारने के लिए घर लौट

आये। अन्य लोगों के मतानुसार, वल्लभाचार्य चैत्र मास की कृष्ण-पक्ष की एकादशी के दिन सम्वत् १४०० शकाब्द में उत्पन्न हुए थे। उनका जन्म खंभंपाटिबारु नामक ब्राह्मण-कुल में हुआ था। इस मत के अनुसार उनके पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट दीक्षित था और वे चम्पकारण्य में उत्पन्न हुए थे। एक अन्य मत है कि वल्लभाचार्य का जन्म चांपाझारग्राम में हुआ, जो मध्य प्रदेश के राजिम रेलवे स्टेशन के पास है।

वाराणसी में ११ वर्षों तक अध्ययन करने के बाद वल्लभाचार्य अपने घर लौट गये। लौटने पर उन्हें पता चला कि उनके पिता भौतिक जगत् से सिधार चुके हैं। उन्होंने अपने भाई तथा अपनी माता को घर पर ही छोड़ दिया और स्वयं तुंगभद्रा नदी के तट पर स्थित विद्यानगर नामक गाँव चले गये। यहीं पर इन्होंने राजा बुक्कराज के पौत्र कृष्णदेव को ज्ञान दिया। इसके बाद प्रत्येक बार छह वर्षों तक उन्होंने भारत का तीन बार भ्रमण किया। इस तरह उन्होंने अठारह वर्ष बिताये और शास्त्रार्थ में विजयी हुए। जब वे ३० वर्ष के थे, तब उन्होंने महालक्ष्मी के साथ विवाह किया, जो उसी ब्राह्मण जाति की थी, जिससे वे स्वयं थे। उन्होंने गोवर्धन पर्वत के निकट घाटी में एक अर्चाविग्रह की स्थापना की। अन्त में वे आड़ाइल आये, जो प्रयाग से यमुना के उस पार स्थित है।

वल्लभाचार्य के दो पुत्र थे—गोपीनाथ तथा विठ्ठलेश्वर। वृद्धावस्था में उन्होंने संन्यास ग्रहण किया। १४५२ शकाब्द (१५३० ई.) में वाराणसी में उन्होंने भौतिक जगत् का त्याग किया। षोडशग्रन्थ, *वेदान्त-सूत्र* की टीकाएँ (अनुभाष्य) तथा *श्रीमद्भागवत* की टीका (सुबोधिनी) उनके अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य पुस्तकें भी लिखी हैं।

তেঁহো দণ্ডবৎকৈল, প্রভু কৈলা আলিঙ্গন ।
দুই জনে কৃষ্ণ-কথা হৈল কত-ক্ষণ ॥৬২॥
तेंहो दण्डवत्कैल, प्रभु कैला आलिङ्गन ।
दुइ जने कृष्ण-कथा हैल कत-क्षण ॥ ६२ ॥

तेंहो—उन्होंने; **दण्डवत्**—दण्डवत् प्रणाम; **कैल**—किया; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **कैला**—किया; **आलिङ्गन**—आलिंगन; **दुइ जने**—उन दोनों के मध्य; **कृष्ण-कथा**—कृष्ण कथाएँ; **हैल**—हुई; **कत-क्षण**—कुछ समय के लिए।

अनुवाद

वल्लभ भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार किया और महाप्रभु ने उनका आलिंगन किया। इसके बाद कुछ समय तक वे कृष्ण-कथाओं के विषय में विचार-विमर्श करते रहे।

कृष्ण-कथाय़ प्रभुर महा-प्रेम उथलिल ।
भट्टेर सङ्कोचे प्रभु सम्वरण कैल ॥ ६३॥

कृष्ण-कथाय प्रभुर महा-प्रेम उथलिल ।
भट्टेर सङ्कोचे प्रभु सम्वरण कैल ॥ ६३॥

कृष्ण-कथाय—कृष्ण कथाओं की चर्चा में; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **महा-प्रेम**—महाप्रेम; **उथलिल**—जागृत हो गया; **भट्टेर**—भट्टाचार्य के; **सङ्कोचे**—संकोच के कारण; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **सम्वरण कैल**—अपने आपको संभाला।

अनुवाद

जब वे कृष्ण-कथा के विषय में बातें कर रहे थे, तब श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यधिक प्रेमावेश का अनुभव हुआ, किन्तु उन्होंने अपना भाव रोका, क्योंकि वल्लभ भट्ट के समक्ष उन्हें संकोच हो रहा था।

अन्तरे गर-गर प्रेम, नहे सम्वरण ।
देखि' चमत्कार हैल बल्लभ-भट्टेर मन ॥ ६४॥

अन्तरे गर-गर प्रेम, नहे सम्वरण ।
देखि' चमत्कार हैल वल्लभ-भट्टेर मन ॥ ६४॥

अन्तरे—अन्दर; **गर-गर**—जोर मारने लगा; **प्रेम**—प्रेम; **नहे**—नहीं; **सम्वरण**—रूक रहा था; **देखि'**—यह देखकर; **चमत्कार**—चकित; **हैल**—हो गया; **वल्लभ-भट्टेर मन**—वल्लभ भट्ट का मन।

अनुवाद

यद्यपि महाप्रभु ने बाहर से अपने आपको रोका, किन्तु उनके भीतर ही भीतर प्रेमावेश उमड़ने लगा। उसको रोक पाना सम्भव नहीं था। वल्लभ भट्ट यह पहचानकर आश्चर्यचकित थे।

তবে ভট্ট মহাপ্রভুরে নিমন্ত্রণ কৈলা ।
মহাপ্রভু দুই-ভাই তাঁহারে মিলাইলা ॥ ৬৫ ॥

তবে ভট্ট মহাপ্রভুরে নিমন্ত্রণ কৈলা ।
মহাপ্রভু দুই-ভাই তাঁহারে মিলাইলা ॥ ৬৫ ॥

তবে—তব; **ভট্ট**—বল্লভ ভট্ট ने; **মহাপ্রভুরে**—শ্রী চৈতন্য মহাপ্রভু को; **নিমন্ত্রণ কৈলা**—निमन्त्रण दिया; **মহাপ্রভু**—শ্রী চৈতন্য মহাপ্রভু; **দুই-ভাই**—दोनों भाई रूप तथा वल्लभ; **তাঁহারে**—उनको; **মিলাইলা**—परिचय करवाया।

অনুবাদ

इसके बाद वल्लभ भट्ट ने श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन पर बुलाया और महाप्रभु ने रूप तथा वल्लभ दोनों भाइयों का उनसे परिचय करवाया।

দুই-ভাই দূর হৈতে ভূমিতে পড়িয়া ।
ভট্টে দণ্ডবৎকৈলা অতি দীন হঞা ॥ ৬৬ ॥

দুই-ভাই দূর হৈতে ভূমিতে পড়িয়া ।
ভট্টে দণ্ডবৎকৈলা অতি দীন হঞা ॥ ৬৬ ॥

দুই-ভাই—दोनों भाई; **দূর হৈতে**—दूर से; **ভূমিতে**—भूमि पर; **পড়িয়া**—गिरकर; **ভট্টে**—वल्लभ भट्ट को; **দণ্ডবৎ কৈলা**—दण्डवत् प्रणाम किया; **অতি দীন হঞা**—अत्यन्त विनम्र होकर।

অনুবাদ

रूप गोस्वामी तथा श्री वल्लभ दोनों भाइयों ने अत्यधिक दीनतावश दूर से ही भूमि पर गिरकर वल्लभ भट्ट को प्रणाम किया।

ভট্ট মিলিবারে যায়, দুঁহে পলায় দূরে ।
'অস্পৃশ্য পামর মুঞি, না ছুঙিহ মোরে' ॥ ৬৭ ॥

ভট্ট মিলিবারে যায়, দুঁহে পলায় দূরে ।
'অস্পৃশ্য পামর মুঞি, না ছুঁইহ মোরে' ॥ ৬৭ ॥

ভট্ট—वल्लभ भट्ट; **মিলিবারে**—मिलने के लिए; **যায়**—गये; **দুঁহে**—दोनों भाई; **পলায়**—

भाग गये; **दूरे**—दूस स्थान पर; **अस्पृश्य**—अछूत; **पामर**—पतित; **मुञि**—मैं; **ना छुँइह**—मत छुओ; **मोरे**—मुझे।

अनुवाद

जब वल्लभ भट्टाचार्य उनकी ओर बढ़े, तो वे और दूर चले गये। रूप गोस्वामी ने कहा, "मैं अछूत और अत्यन्त पापी हूँ। कृपा करके मुझे न छुएँ।"

ভট্টের বিস্ময় হৈল, প্রভুর হর্ষ মন ।
ভট্টেরে কহিলা প্রভু তাঁর বিবরণ ॥৬৮॥

भट्टेर विस्मय हैल, प्रभुर हर्ष मन ।
भट्टेरे कहिला प्रभु ताँर विवरण ॥६८॥

भट्टेर—वल्लभ भट्टचार्य को; **विस्मय हैल**—आश्चर्य हुआ; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **हर्ष**—हर्ष; **मन**—मन; **भट्टेरे कहिला**—वल्लभ भट्टाचार्य को कहा; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **ताँर विवरण**—उनका (रूप गोस्वामी) वर्णन दिया।

अनुवाद

इस पर वल्लभ भट्टाचार्य को अत्यधिक आश्चर्य हुआ। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न थे; अतएव उन्होंने रूप गोस्वामी का यह विवरण उन्हें दिया।

'ইঁহো না স্পর্শিহ, ইঁহো জাতি অতি-হীন! ।
বৈদিক, যাজ্ঞিক তুমি কুলীন প্রবীণ!' ॥৬৯॥

'इँहो ना स्पर्शिह, इँहो जाति अति-हीन! ।
वैदिक, याज्ञिक तुमि कुलीन प्रवीण!' ॥६९॥

इँहो—उसको; **ना स्पर्शिह**—छुओ नहीं; **इँहो**—वह; **जाति**—जाति; **अति-हीन**—बहुत नीची; **वैदिक**—वैदिक सिद्धान्तों का अनुयायी; **याज्ञिक**—कई यज्ञों को करने वाला; **तुमि**—आप; **कुलीन**—उच्च जाति के ब्राह्मण; **प्रवीण**—एक अनुभवी व्यक्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "उसे मत छुएँ, क्योंकि वह अत्यन्त निम्न जाति का है। आप तो वैदिक नियमों के अनुयायी हैं और अनेक यज्ञों को सम्पन्न करने में अत्यन्त अनुभवी हैं। आप तो कुलीन भी हैं।"

तात्पर्य

सामान्यतया ब्राह्मणों को इसका मिथ्या गर्व रहता है कि वे कुलीन होते हैं और अनेक वैदिक यज्ञ करते हैं। दक्षिण भारत में विशेषतया यह गर्वित स्थिति अत्यधिक मुखर है। जो भी हो, ५०० वर्ष पूर्व ऐसी दशा थी। श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन का शुभारम्भ करके इस ब्राह्मण-पद्धति के विरुद्ध विद्रोह शुरू किया। इस कीर्तन से जाति, पाँति, रंग या सामाजिक स्थिति के भेदभाव के बिना मनुष्य का उद्धार किया जा सकता है। जो भी हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करता है, वह भक्ति की दिव्य स्थिति के कारण तुरन्त शुद्ध हो जाता है। यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु वल्लभ भट्टाचार्य को यह इंगित कर रहे हैं कि यज्ञ करने वाले तथा वैदिक नियमों का पालन करने वाले कुलीन ब्राह्मण को भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन द्वारा भक्ति में लगे व्यक्ति की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

वास्तव में रूप गोस्वामी निम्न जाति के नहीं थे। वे अत्यन्त कुलीन ब्राह्मण परिवार के थे, किन्तु मुसलमान नवाब की संगति के कारण वे पतित तथा ब्राह्मण समाज से निष्कासित माने जाते थे। किन्तु फिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनकी उन्नत भक्ति के कारण उन्हें *गोस्वामी* के रूप में स्वीकार किया। वल्लभ भट्टाचार्य यह बात जानते थे। भक्त की जाति-पाँति नहीं होती, फिर भी वल्लभ भट्टाचार्य अपने आपको प्रतिष्ठित अनुभव करते थे।

बम्बई के वल्लभ भट्टाचार्य सम्प्रदाय के वर्तमान अध्यक्ष दीक्षित महाराज हैं। वे हमारे आन्दोलन के प्रति अच्छा मित्रभाव रखते हैं और जब भी हमारी उनसे भेंट होती है, वे ब्राह्मण विद्वान हरे कृष्ण आन्दोलन के कार्यों की खूब प्रशंसा करते हैं। वे हमारे संघ के आजीवन सदस्य हैं और जात ब्राह्मण परम्परा के विद्वान होते हुए भी हमारे संघ को स्वीकार करते हैं और इसके सदस्यों को भगवान् विष्णु के प्रामाणिक भक्त समझते हैं।

दुँहार मुखे निरन्तर कृष्ण-नाम शुनि' ।
भट्ट कहे, प्रभुर किछु इङ्गित-भङ्गी जानि' ॥७०॥

दुँहार मुखे निरन्तर कृष्ण-नाम शुनि' ।
भट्ट कहे, प्रभुर किछु इङ्गित-भङ्गी जानि' ॥ ७० ॥

दुँहार मुखे—रूप गोस्वामी तथा उसके भाई वल्लभ दोनों के मुख में; **निरन्तर**—निरन्तर; **कृष्ण-नाम शुनि'**—कृष्ण के पावन नाम के जप को सुनकर; **भट्ट कहे**—वल्लभ भट्टाचार्य ने कहा; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **किछु**—कुछ; **इङ्गित**—संकेत; **भङ्गी**—संकेत; **जानि'**—समझ गये।

अनुवाद

दोनों भाइयों को कृष्ण-नाम का निरन्तर जप करते सुनकर वल्लभ भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के संकेतों को समझ सके।

'दुँहार मुखे कृष्ण-नाम करिछे नर्तन ।
एइ-दुइ 'अधम' नहे, हय 'सर्वोत्तम' ॥ ७१ ॥

'दुँहार मुखे कृष्ण-नाम करिछे नर्तन ।
एइ-दुइ 'अधम' नहे, हय 'सर्वोत्तम' ॥ ७१ ॥

दुँहार मुखे—दोनों के मुख में; **कृष्ण-नाम**—भगवान् कृष्ण का पावन नाम; **करिछे**—करता है; **नर्तन**—नृत्य; **एइ-दुइ**—वे दोनों; **अधम नहे**—पतित नहीं; **हय**—हैं; **सर्व-उत्तम**—सर्वोत्तम।

अनुवाद

वल्लभ भट्टाचार्य ने कहा, "जब ये दोनों निरन्तर कृष्ण-नाम का कीर्तन जप रहते हैं, तो फिर ये अस्पृश्य कैसे हो सकते हैं? उल्टे, ये सर्वोत्तम हैं।"

तात्पर्य

वल्लभ भट्टाचार्य द्वारा दोनों भाइयों के उच्च पद को स्वीकार किया जाना उन लोगों के लिए शिक्षा देने वाला है, जो अपने ब्राह्मण-पद पर मिथ्या गर्व करते हैं। कभी-कभी तथाकथित ब्राह्मण हमारे यूरोपीय तथा अमरीकी शिष्यों को भक्त या ब्राह्मण नहीं मानते और कुछ ब्राह्मण तो इतने अहंकारी होते हैं कि वे उन्हें मन्दिरों में नहीं प्रवेश करने देते। यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु एक बहुत बड़ी शिक्षा दे रहे हैं। यद्यपि वल्लभ भट्टाचार्य ब्राह्मणवाद के धुरन्धर पंडित थे और विद्वान थे, फिर भी उन्होंने स्वीकार किया कि जो भगवान् के

नाम का कीर्तन करते हैं, वे प्रामाणिक ब्राह्मण तथा वैष्णव हैं, अतएव सर्वोच्च हैं।

अहो बत श्व-पचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥७२॥

अहो बत श्व-पचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥७२॥

अहो बत—यह कितना आश्चर्यजनक है; **श्व-पचः**—चण्डाल (कुत्ता-भक्षी); **अतः**—दीक्षित ब्राह्मण की अपेक्षा; **गरीयान्**—अधिक महिमायुक्त; **यत्**—जिसकी; **जिह्वा-अग्रे**—जिह्वा पर; **वर्तते**—रहता है; **नाम**—पावन नाम; **तुभ्यम्**—मेरे प्रभु, आपका; **तेपुः**—की है; **तपः**—तपस्या; **ते**—उन्होंने; **जुहुवुः**—यज्ञ किये हैं; **सस्नुः**—सारे तीर्थ स्थानों में स्नान किये हैं; **आर्याः**—आर्य जाति के; **ब्रह्म**—सारे वेद; **अनूचुः**—पढ़े हैं; **नाम**—पावन नाम का; **गृणन्ति**—जप करते हैं; **ये**—जो; **ते**—वे।

अनुवाद

तब वल्लभ भट्टाचार्य ने यह श्लोक सुनाया, "'हे प्रभु, जिस व्यक्ति की जीभ पर आपका पवित्र नाम सदा रहता है, वह दीक्षित ब्राह्मण से भी बढ़कर होता है। भले ही वह चण्डाल कुल में क्यों न उत्पन्न हुआ हो और भौतिक दृष्टि से अत्यन्त नीच व्यक्ति हो, फिर भी वह यशस्वी है। यह भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन का अद्भुत प्रभाव है। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि जो भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करता है, उसे वेदोक्त सारे तप तथा यज्ञ सम्पन्न किया हुआ मान लेना चाहिए। वह पहले से सारे तीर्थों में स्नान कर चुका होता है। वह सारे वेदों का अध्ययन कर चुका होता है और वास्तव में आर्य होता है।'"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (३.३३.७) से उद्धृत है।

शुनि' महाप्रभु ताँरे बहु प्रशंसिला ।
प्रेमाविष्ट हञा श्लोक पड़िते लागिला ॥७३॥

शुनि' महाप्रभु ताँरे बहु प्रशंसिला ।
प्रेमाविष्ट हञा श्लोक पड़िते लागिला ॥७३॥

शुनि'—सुनकर; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **ताँरे**—उसकी; **बहु**—बहुत अधिक; **प्रशंसिला**—प्रशंसा की; **प्रेम-आविष्ट हञा**—प्रेमाविष्ट होकर; **श्लोक**—श्लोक; **पड़िते लागिला**—पढ़ने लगे।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट को भक्त के विषय में शास्त्र से उद्धरण देते सुनकर महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न थे। महाप्रभु ने स्वयं उनकी प्रशंसा की और वे भगवत्प्रेम से आविष्ट होकर शास्त्रों से अनेक श्लोक सुनाने लगे।

शुचिः सद्भक्ति-दीप्ताग्नि-दग्ध-दुर्जाति-कल्मषः ।
श्व-पाकोऽपि बुधैः श्लाघ्यो न वेद-ज्ञोऽपि नास्तिकः ॥७४॥

शुचिः सद्भक्ति-दीप्ताग्नि-दग्ध-दुर्जाति-कल्मषः ।
श्व-पाकोऽपि बुधैः श्लाघ्यो न वेद-ज्ञोऽपि नास्तिकः ॥७४॥

शुचिः—बाहर तथा अन्दर से शुद्ध ब्राह्मण; **सत्-भक्ति**—निष्काम भक्ति; **दीप्त-अग्नि**—जलती अग्नि से; **दग्ध**—जलकर राख हुई; **दुर्जाति**—जैसे कि निम्न वंश में जन्म; **कल्मषः**—जिसके पापों का फल; **श्व-पाकः अपि**—चण्डाल कुल में जन्मे होने पर भी; **बुधैः**—विद्वानों द्वारा; **श्लाघ्यः**—प्रशंसित; **न**—नहीं; **वेद-ज्ञः अपि**—वैदिक ज्ञान में पूर्णरूपेण निपुण; **नास्तिकः**—एक नास्तिक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "'भक्ति प्रज्वलित अग्नि की तरह विगत जीवन के सारे पापों के फलों को जला देती है। जो व्यक्ति उस भक्ति के कारण ब्राह्मण के शुद्ध गुणों से युक्त है, वह निम्न-कुल में जन्म लेने जैसे पापकर्मों के परिणामों से निश्चित रूप से बच जाता है। भले ही वह चण्डाल के परिवार में क्यों न जन्मा हो, विद्वान उसे मान्यता प्रदान करते हैं। किन्तु वैदिक ज्ञान में पंडित व्यक्ति, यदि वह नास्तिक हो, तो उसे मान्यता नहीं मिलती।

तात्पर्य

यह श्लोक तथा अगला श्लोक *हरिभक्ति-सुधोदय* (३.११, १२) से उद्धृत हैं, जो पुराणों से उद्धृत दिव्य साहित्य है।

भगवद्भक्ति-हीनस्य जातिः शास्त्रं जपस्तपः ।
अप्राणस्येव देहस्य मण्डनं लोक-रञ्जनम् ॥ ७५ ॥

भगवद्भक्ति-हीनस्य जातिः शास्त्रं जपस्तपः ।
अप्राणस्येव देहस्य मण्डनं लोक-रञ्जनम् ॥ ७५ ॥

भगवत्-भक्ति-हीनस्य—भगवद् भक्ति से रहित व्यक्ति का; **जातिः**—उच्च जाति में जन्म; **शास्त्रम्**—शास्त्रों में ज्ञान; **जपः**—मंत्रोच्चारण; **तपः**—तपस्या; **अप्राणस्य**—जो मृत है; **इव**—की तरह; **देहस्य**—शरीर की; **मण्डनम्**—सजावट; **लोक**—सामान्य लोगों की भावनाओं को; **रञ्जनम्**—मात्र प्रसन्न करने वाली।

अनुवाद

"'भक्तिहीन व्यक्ति के लिए उच्च कुल या राष्ट्र में जन्म लेना, शास्त्र-ज्ञान, व्रत-तप तथा वैदिक मन्त्रोच्चार वैसे ही हैं, जैसे मृत शरीर को गहने पहनाना। ऐसे गहने केवल सामान्य जनता के मनोकल्पित आनन्द की ही तुष्टि करने वाले होते हैं।'"

प्रभुर प्रेमावेश, आर प्रभाव भक्ति-सार ।
सौन्दर्यादि देखि' भट्टेर हैल चमत्कार ॥ ७६ ॥

प्रभुर प्रेमावेश, आर प्रभाव भक्ति-सार ।
सौन्दर्य्यादि देखि' भट्टेर हैल चमत्कार ॥ ७६ ॥

प्रभुर—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **प्रेम-आवेश**—प्रेमावेश; **आर**—और; **प्रभाव**—प्रभाव; **भक्ति-सार**—भक्ति का सार; **सौन्दर्य्य-आदि**—सुन्दरता आदि गुण; **देखि'**—देखकर; **भट्टेर**—वल्लभ भट्टाचार्य; **हैल**—था; **चमत्कार**—चकित।

अनुवाद

महाप्रभु के प्रेमावेश को देखकर वल्लभ भट्टाचार्य अत्यधिक आश्चर्यचकित थे। वे महाप्रभु के भक्ति विषयक ज्ञान तथा उनके शारीरिक सौन्दर्य और प्रभाव से भी आश्चर्यचकित थे।

सगणे प्रभुरे भट्ट नौकाते चड़ाञा ।
भिक्षा दिते निज-घरे चलिला लञा ॥७७॥

सगणे प्रभुरे भट्ट नौकाते चड़ाञा ।
भिक्षा दिते निज-घरे चलिला लञा ॥७७॥

स-गणे—अपने साथियों के साथ; **प्रभुरे**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **भट्ट**—वल्लभ भट्टाचार्य; **नौकाते**—नौका पर; **चड़ाञा**—चढ़ाकर; **भिक्षा दिते**—भोजन देने के लिए; **निज-घरे**—अपने घर में; **चलिला**—चले; **लञा**—लेकर।

अनुवाद

तब वल्लभ भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगियों को नाव में चढ़ाया और उन्हें भोजन कराने के लिए अपने स्थान पर ले गये।

यमुनार जल देखि' चिक्कण श्यामल ।
प्रेमावेशे महाप्रभु हइला विह्वल ॥७८॥

यमुनार जल देखि' चिक्कण श्यामल ।
प्रेमावेशे महाप्रभु हइला विह्वल ॥७८॥

यमुनार—यमुना नदी का; **जल**—जल; **देखि'**—देखकर; **चिक्कण**—चिकना; **श्यामल**—श्यामल; **प्रेम-आवेशे**—प्रेमावेश में; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **हइला**—हो गये; **विह्वल**—विचलित।

अनुवाद

यमुना नदी पार करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने चिकना श्यामल जल देखा, तो वे तुरन्त ही प्रेमावेश में विह्वल हो गये।

हुङ्कार करि' यमुनार जले दिला झाँप ।
प्रभु देखि' सबार मने हैल भय-काँप ॥७९॥

हुङ्कार करि' यमुनार जले दिला झाँप ।
प्रभु देखि' सबार मने हैल भय-काँप ॥७९॥

हुङ्कार करि'—ऊँची आवाज करते हुए; **यमुनार जले**—यमुना नदी के जल में; **दिला**—दिया; **झाँप**—कूद गये; **प्रभु देखि'**—श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर; **सबार**—हर एक के; **मने**—मन में; **हैल**—हुआ; **भय-काँप**—भय और कम्पन।

अनुवाद

यमुना नदी को देखते ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने हुंकार की और पानी में कूद पड़े। यह देखकर सारे लोग भयभीत होकर काँपने लगे।

आस्ते-व्यस्ते सबे धरि' प्रभुरे उठाइल ।
नौकार उपरे प्रभु नाचिते लागिल ॥८०॥

आस्ते-व्यस्ते सबे धरि' प्रभुरे उठाइल ।
नौकार उपरे प्रभु नाचिते लागिल ॥८०॥

आस्ते-व्यस्ते—अत्यन्त जल्दी में; **सबे**—सबने; **धरि'**—पकड़कर; **प्रभुरे**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **उठाइल**—उठाया; **नौकार**—नौका के; **उपरे**—ऊपर; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **नाचिते लागिल**—नृत्य करने लगे।

अनुवाद

उन्होंने शीघ्रतिशीघ्र श्री चैतन्य महाप्रभु को पकड़ा और जल से बाहर निकाला। नाव के ऊपर आकर महाप्रभु नृत्य करने लगे।

महाप्रभुर भरे नौका करे टलमल ।
डुबिते लागिल नौका, झलके भरे जल ॥८१॥

महाप्रभुर भरे नौका करे टलमल ।
डुबिते लागिल नौका, झलके भरे जल ॥८१॥

महाप्रभुर—श्री चैतन्य महाप्रभु के; **भरे**—वजन के कारण; **नौका**—नौका; **करे**—हुई; **टलमल**—डगमगाने; **डुबिते**—डूबने के लिए; **लागिल**—लगी; **नौका**—नौका; **झलके**—जोरदार लहरों में; **भरे**—भर गया; **जल**—जल।

अनुवाद

महाप्रभु के भार से नाव हिलने-डुलने लगी। उसमें जल भरने लगा और डूबने को हो गई।

यद्यपि भट्टेर आगे प्रभुर धैर्य हैल मन ।
दुर्वार उद्भट प्रेम नहे सम्वरण ॥८२॥

য়দ্যপি ভট্টের আগে প্রভুর ধৈর্য্য হৈল মন ।
দুর্বার উদ্ধট প্রেম নহে সম্বরণ ॥ ৮২॥

য়দ্যপি—यद्यपि; **ভট্টের**—वल्लभाचार्य के; **আগে**—समक्ष; **প্রভুর**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **ধৈর্য্য**—धैर्य; **হৈল**—था; **মন**—मन; **দুর্বার**—रोकने में कठिन; **উদ্ধট**—अद्‌भुत; **প্রেম**—प्रेम; **নহে**—नहीं है; **সম্বরণ**—रोकना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने वल्लभाचार्य के समक्ष अपने आपको यथासम्भव संभालने का प्रयास किया और अपने आपको शान्त रखना चाहा, किन्तु उनका प्रेमभाव रोके न रुका।

দেশ-পাত্র দেখি' মহাপ্রভু ধৈর্য হইল ।
আড়াইলের ঘাটে নৌকা আসি' উত্তরিল ॥ ৮৩॥

দেশ-পাত্র দেখি' মহাপ্রভু ধৈর্য্য হইল ।
আড়াইলের ঘাটে নৌকা আসি' উত্তরিল ॥ ৮৩॥

দেশ-পাত্র দেখি'—परिस्थितियाँ देखकर; **মহাপ্রভু**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **ধৈর্য্য হইল**—शान्त हो गये; **আড়াইলের ঘাটে**—आड़ाइला गाँव के किनारे पर; **নৌকা**—नौका; **আসি'**—आकर; **উত্তরিল**—लगी।

अनुवाद

परिस्थिति देखकर महाप्रभु शान्त हो गये, जिससे नाव आड़ाइल के किनारे पहुँचकर लग सकी।

ভয়ে ভট্ট সঙ্গে রহে, মধ্যাহ্ন করাঞা ।
নিজ-গৃহে আনিলা প্রভুরে সঙ্গেতে লঞা ॥ ৮৪॥

ভয়ে ভট্ট সঙ্গে রহে, মধ্যাহ্ন করাঞা ।
নিজ-গৃহে আনিলা প্রভুরে সঙ্গেতে লঞা ॥ ৮৪॥

ভয়ে—भय सहित; **ভট্ট**—वल्लभ भट्टाचार्य; **সঙ্গে**—श्री चैतन्य महाप्रभु की संगति में; **রহে**—रहे; **মধ্যাহ্ন করাঞা**—उनके स्नान की व्यवस्था करने के बाद; **নিজ-গৃহে**—अपने घर पर; **আনিলা**—ले आये; **প্রভুরে**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **সঙ্গেতে**—साथ में; **লঞা**—लेकर।

अनुवाद

महाप्रभु की कुशलता के लिए भयभीत वल्लभ भट्टाचार्य उनके साथ रहे। महाप्रभु के स्नान का प्रबन्ध करने के बाद भट्टाचार्य उन्हें अपने घर ले गये।

আনন্দিত হঞা ভট্ট দিল দিব্যাসন ।
আপনে করিল প্রভুর পাদ-প্রক্ষালন ॥ ৮৫ ॥

আনন্দিত হঞা ভট্ট দিল দিব্যাসন ।
আপনে করিল প্রভুর পাদ-প্রক্ষালন ॥ ৮৫ ॥

আনন্দিত হঞা—प्रसन्न होकर; **ভট্ট**—वल्लभ भट्टाचार्य ने; **দিল**—दिया; **দিব্য-আসন**—एक सुन्दर आसन; **আপনে**—स्वयं; **করিল**—किया; **প্রভুর**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **পাদ-প্রক্ষালন**—चरणों को धोना।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वल्लभ भट्टाचार्य के घर पहुँचे, तब अत्यन्त प्रसन्न होने के कारण, उन्होंने महाप्रभु को सुन्दर आसन प्रदान किया और स्वयं उनके चरणों को धोया।

সবংশে সেই জল মস্তকে ধরিল ।
নূতন কৌপীন-বহির্বাস পরাইল ॥ ৮৬ ॥

সবংশে সেই জল মস্তকে ধরিল ।
নূতন কৌপীন-বহির্বাস পরাইল ॥ ৮৬ ॥

স-বংশে—परिवार के सभी सदस्यों सहित; **সেই**—वह; **জল**—जल; **মস্তকে**—सिर पर; **ধরিল**—छिड़का; **নূতন**—नया; **কৌপীন**—कौपीन; **বহির্বাস**—बाह्य वस्त्र; **পরাইল**—पहनाया।

अनुवाद

तब वल्लभ भट्टाचार्य तथा उनके पूरे परिवार ने वह जल अपने सिरों के ऊपर छिड़का। फिर उन्होंने महाप्रभु को नया कौपीन तथा बाह्य वस्त्र दिये।

গন্ধ-পুষ্প-ধূপ-দীপে মহা-পূজা কৈল ।
ভট্টাচার্যে মান্য করি' পাক করাইল ॥৮৭॥

गन्ध-पुष्प-धूप-दीपे महा-पूजा कैल ।
भट्टाचार्य्ये मान्य करि' पाक कराइल ॥८७॥

गन्ध—सुगन्धियाँ; **पुष्प**—पुष्प; **धूप**—धूप; **दीपे**—दीपों से; **महा-पूजा कैल**—महाप्रभु की बड़े ऐश्वर्य के साथ पूजा की; **भट्टाचार्य्ये**—बलभद्र भट्टाचार्य को; **मान्य करि'**—सम्मान देकर; **पाक कराइल**—पकाने में लगाकर।

अनुवाद

वल्लभाचार्य ने सुगन्ध, अगुरु, फूल तथा दीप के द्वारा बड़ी सजधज से महाप्रभु की पूजा की और बड़े ही आदर के साथ (महाप्रभु के रसोइये) बलभद्र भट्टाचार्य को भोजन पकाने के लिए राजी किया।

ভিক্ষা করাইল প্রভুরে সস্নেহ যতনে ।
রূপ-গোসাঞি দুই-ভাইয়ে করাইল ভোজনে ॥৮৮॥

भिक्षा कराइल प्रभुरे सस्नेह यतने ।
रूप-गोसाञि दुइ-भाइये कराइल भोजने ॥८८॥

भिक्षा कराइल—भोजन खिलाया; **प्रभुरे**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **सस्नेह**—स्नेहपूर्वक; **यतने**—बहुत सावधानी से; **रूप-गोसाञि**—श्रील रूप गोस्वामी; **दुइ-भाइये**—दोनों भाइयों को; **कराइल भोजने**—भोजन कराया।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु को बड़ी ही सावधानी से तथा स्नेह से भोजन परोसा गया। रूप गोस्वामी तथा श्री वल्लभ दोनों भाइयों को भी भोजन दिया गया।

ভট্টাচার্য শ্রী-রূপে দেওয়াইল 'অবশেষ' ।
তবে সেই প্রসাদ কৃষ্ণদাস পাইল শেষ ॥৮৯॥

भट्टाचार्य्य श्री-रूपे देओयाइल 'अवशेष' ।
तबे सेइ प्रसाद कृष्णदास पाइल शेष ॥८९॥

भट्टाचार्य्य—वल्लभ भट्टाचार्य ने; **श्री-रूपे**—श्रील रूप गोस्वामी को; **देओयाइल**—

दिया; **अवशेष**—शेष; **तबे**—तब; **सेइ**—वे; **प्रसाद**—शेष बचा प्रसाद; **कृष्णदास**—कृष्णदास को; **पाइल**—मिला; **शेष**—शेष।

अनुवाद

वल्लभ भट्टाचार्य ने सबसे पहले श्रील रूप गोस्वामी को महाप्रभु के भोजन का शेष दिया और फिर कृष्णदास को दिया।

মুখ-বাস দিয়া প্রভুরে করাইল শয়ন ।
আপনে ভট্ট করেন প্রভুর পাদ-সম্বাহন ॥৯০॥

मुख-वास दिया प्रभुरे कराइल शयन ।
आपने भट्ट करेन प्रभुर पाद-सम्वाहन ॥ ९० ॥

मुख-वास—मसाले; **दिया**—देकर; **प्रभुरे**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **कराइल**—करवाया; **शयन**—विश्राम; **आपने**—स्वयं; **भट्ट**—श्रील वल्लभ भट्ट; **करेन**—किया; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **पाद-सम्वाहन**—चरण सेवा।

अनुवाद

तब महाप्रभु को मुख-शुद्धि के लिए मसाला दिया गया। इसके बाद उन्हें शयन कराया गया और वल्लभ भट्टाचार्य ने अपने हाथों से उनके पाँव दबाये।

প্রভু পাঠাইল তাঁরে করিতে ভোজনে ।
ভোজন করি' আইলা তেঁহো প্রভুর চরণে ॥৯১॥

प्रभु पाठाइल ताँरे करिते भोजने ।
भोजन करि' आइला तेंहो प्रभुर चरणे ॥ ९१ ॥

प्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु; **पाठाइल**—भेजा; **ताँरे**—उनको (वल्लभ भट्टाचार्य को); **करिते भोजने**—भोजन करने के लिए; **भोजन करि'**—भोजन करने के बाद; **आइला**—आये; **तेंहो**—वे; **प्रभुर चरणे**—श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर।

अनुवाद

जब वल्लभ भट्टाचार्य उनके पाँव दबा रहे थे, तब महाप्रभु ने उनसे जाकर प्रसाद ग्रहण करने के लिए कहा। वे प्रसाद ग्रहण करके पुनः महाप्रभु के चरणकमलों पर लौट आये।

হেন-কালে আইলা রঘুপতি উপাধ্যায় ।
তিরুহিতা পণ্ডিত, বড় বৈষ্ণব, মহাশয় ॥৯২॥

हेन-काले आइला रघुपति उपाध्याय ।
तिरुहिता पण्डित, बड़ वैष्णव, महाशय ॥ ९२॥

हेन-काले—इस समय; **आइला**—आ पहुँचा; **रघुपति उपाध्याय**—रघुपति उपाध्याय नामक एक ब्राह्मण; **तिरुहिता**—तिरुहिता जिले का रहने वाला; **पण्डित**—एक बहुत विद्वान पण्डित; **बड़**—बड़ा; **वैष्णव**—भक्त; **महाशय**—महाशय।

अनुवाद

उस समय रघुपति उपाध्याय आया जो तिरुहिता जिले का था। वह बहुत बड़ा विद्वान, महान् भक्त तथा सम्मानित व्यक्ति था।

तात्पर्य

तिरुहिता या तिर्हुतिया बिहार के चार जिलों—सारन, चम्पारण, मुजफ्फरपुर तथा द्वारभांगा को मिलाकर बना है। इस राज्य के लोग तिरुटिया कहलाते हैं।

আসি' তেঁহো কৈল প্রভুর চরণ বন্দন ।
'কৃষ্ণে মতি রহু' বলি' প্রভুর বচন ॥৯৩॥

आसि' तेंहो कैल प्रभुर चरण वन्दन ।
'कृष्णे मति रहु' बलि' प्रभुर वचन ॥ ९३॥

आसि'—आकर; **तेंहो**—उसने; **कैल**—किया; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु के; **चरण वन्दन**—चरणकमलों की पूजा; **कृष्णे मति रहु**—सदा कृष्णभावनामृत में बने रहो; **बलि'**—यह कहकर; **प्रभुर वचन**—श्री चैतन्य महाप्रभु का आशीर्वाद।

अनुवाद

रघुपति उपाध्याय ने सर्वप्रथम श्री चैतन्य महाप्रभु की वन्दना की और महाप्रभु ने यह कहते हुए आशीर्वाद दिया, "सदैव कृष्णभावनामय बने रहो।"

শুনি' আনন্দিত হৈল উপাধ্যায়ের মন ।
প্রভু তাঁরে কহিল,—'কহ কৃষ্ণের বর্ণন' ॥৯৪॥

शुनि' आनन्दित हैल उपाध्यायेर मन ।
प्रभु ताँरे कहिल,—'कह कृष्णेर वर्णन' ॥ ९४॥

शुनि'—सुनकर; **आनन्दित**—अत्यन्त प्रसन्न; **हैल**—हो गया; **उपाध्यायेर मन**—उपाध्याय का मन; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **ताँरे**—उसको; **कहिल**—कहा; **कह कृष्णेर वर्णन**—कृष्ण कथा करने का प्रयास करो।

अनुवाद

रघुपति उपाध्याय महाप्रभु का आशीर्वाद सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हुआ। इसके बाद महाप्रभु ने उससे कृष्ण का वर्णन करने के लिए कहा।

निज-कृत कृष्ण-लीला-श्लोक पड़िल ।
शुनि' महाप्रभुर महा प्रेमावेश हैल ॥ ९५॥

निज-कृत कृष्ण-लीला-श्लोक पड़िल ।
शुनि' महाप्रभुर महा प्रेमावेश हैल ॥ ९५॥

निज-कृत—स्वरचित; **कृष्ण-लीला**—कृष्ण लीला पर; **श्लोक**—श्लोक; **पड़िल**—पढ़े; **शुनि'**—सुनकर; **महाप्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **महा**—महान्; **प्रेम-आवेश**—प्रेमावेश; **हैल**—हुआ।

अनुवाद

जब रघुपति उपाध्याय से कृष्ण का वर्णन करने के लिए कहा गया, तो उसने कुछ श्लोक सुनाये, जो उसने कृष्ण-लीला के विषय में स्वयं लिखे थे। उन श्लोकों को सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु प्रेम से विह्वल हो गये।

श्रुतिमपरे स्मृतिमितरे
ভারতমন্যে ভজন্তু ভব-ভীতাঃ ।
অহমিহ নন্দং বন্দে
যস্যালিন্দে পরং ব্রহ্ম ॥ ৯৬॥

श्रुतिमपरे स्मृतिमितरे
भारतमन्ये भजन्तु भव-भीताः ।
अहमिह नन्दं वन्दे
यस्यालिन्दे परं ब्रह्म ॥ ९६॥

श्रुतिम्—वैदिक साहित्य; **अपरे**—कोई; **स्मृतिम्**—वैदिक साहित्य की पूरक; **इतरे**—अन्य; **भारतम्**—महाभारत; **अन्ये**—अन्य; **भजन्तु**—पूजा करें; **भव-भीताः**—भौतिक जीवन से भयभीत; **अहम्**—मैं; **इह**—यहाँ; **नन्दम्**—महाराज नन्द; **वन्दे**—पूजा करता हूँ; **यस्य**—जिनके; **अलिन्दे**—आँगन में; **परम् ब्रह्म**—परम ब्रह्म, परम सत्य।

अनुवाद

रघुपति उपाध्याय ने सुनाया, "इस भौतिक अस्तित्व से भयभीत लोग वैदिक साहित्य की पूजा करते हैं। कुछ स्मृति की पूजा करते हैं, जो वैदिक साहित्य के उपसिद्धान्त हैं, तो कुछ महाभारत की। किन्तु मैं तो कृष्ण के पिता महाराज नन्द की पूजा करता हूँ, जिनके आँगन में परम सत्य, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् खेल रहे हैं।"

तात्पर्य

रघुपति उपाध्याय द्वारा सुनाया गया यह श्लोक बाद में श्री रूप गोस्वामी कृत *पद्यावली* (१२६) में सम्मिलित कर लिया गया।

'आगे कह'—प्रभु-वाक्যে উপাধ্যায় কহিল ।
রঘুপতি উপাধ্যায় নমস্কার কৈল ॥৯৭॥

'आगे कह'—प्रभु-वाक्ये उपाध्याय कहिल ।
रघुपति उपाध्याय नमस्कार कैल ॥ ९७॥

आगे कह—कृपया आगे कहो; **प्रभु-वाक्ये**—श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुरोध पर; **उपाध्याय**—रघुपति उपाध्याय; **कहिल**—कहा; **रघुपति उपाध्याय**—रघुपति उपाध्याय; **नमस्कार कैल**—श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार किया।

अनुवाद

जब महाप्रभु ने रघुपति उपाध्याय से और अधिक सुनाने के लिए कहा, तो उसने तुरन्त ही महाप्रभु को नमस्कार किया और उनके आग्रह को स्वीकार कर लिया।

কং প্রতি কথয়িতুমীশে
সম্প্রতি কো বা প্রতীতিমায়াতু ।
গো-পতি-তনয়া-কুঞ্জে
গোপ-বধূটী-বিটং ব্রহ্ম ॥৯৮॥

कं प्रति कथयितुमीशे
सम्प्रति को वा प्रतीतिमायातु ।
गो-पति-तनया-कुञ्जे
गोप-वधूटी-विटं ब्रह्म ॥ ९८ ॥

कम् प्रति—किसको; **कथयितुम्**—बोलने के लिए; **ईशे**—मैं समर्थ हूँ; **सम्प्रति**—अब; **कः**—कौन; **वा**—अथवा; **प्रतीतिम्**—विश्वास; **आयातु**—करेगा; **गो-पति**—सूर्यदेव की; **तनया**—पुत्री (यमुना); **कुञ्जे**—तट के कुंजों में; **गोप-वधूटी**—गोपियों के; **विटम्**—शिकारी; **ब्रह्म**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"मैं किससे कहूँ और कौन मेरी बातों में विश्वास करेगा, यदि मैं कहूँ कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण यमुना नदी के तट पर गोपियों के साथ कुंजों में विहार कर रहे हैं? भगवान् इस तरह से अपनी लीलाओं को प्रदर्शित करते हैं।"

तात्पर्य

बाद में यह श्लोक *पद्यावली* (९९) में सम्मिलित कर लिया गया।

প্রভু কহেন,—কহ, তেঁহো পড়ে কৃষ্ণ-লীলা ।
প্রেমাবেশে প্রভুর দেহ-মন আয়ুয়াইলা ॥ ৯৯ ॥

প্রভু কহেন,—কহ, তেঁহো পড়ে কৃষ্ণ-লীলা ।
প্রেমাবেশে প্রভুর দেহ-মন আয়ুয়াইলা ॥ ৯৯ ॥

প্রভু কহেন—श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **কহ**—कृपया कहते रहो; **তেঁহো**—उसने; **পড়ে**—पढ़ा; **কৃষ্ণ-লীলা**—भगवान् कृष्ण की लीलाएँ; **প্রেম-আবেশে**—प्रेमावेश में आकर; **প্রভুর**—श्री चैतन्य महाप्रभु के; **দেহ-মন**—तन मन; **আয়ুয়াইলা**—शिथिल हो गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुपति उपाध्याय से अनुरोध किया कि वह श्रीकृष्ण की लीलाओं के विषय में कहता रहे। इस तरह महाप्रभु प्रेमाविष्ट हो गये और उनका मन तथा शरीर शिथिल पड़ गये।

तात्पर्य

हमारे मन तथा शरीर सदैव भौतिक कार्यों में लगे रहते हैं। जब उन्हें

आध्यात्मिक स्तर पर सक्रिय बनाया जाता है, तब वे भौतिक स्तर पर शिथिल पड़ जाते हैं।

प्रेम देखि' उपाध्यायेर हैल चमत्कार ।
'मनुष्य नहे, ईँहो——कृष्ण'——करिल निर्धार ॥ १०० ॥

प्रेम देखि' उपाध्यायेर हैल चमत्कार ।
'मनुष्य नहे, ईँहो——कृष्ण'——करिल निर्धार ॥ १०० ॥

प्रेम देखि'—प्रेम देखकर; **उपाध्यायेर**—रघुपति उपाध्याय को; **हैल**—हो गया; **चमत्कार**—आश्चर्य; **मनुष्य नहे**—मनुष्य नहीं; **ईँहो**—वे; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण स्वयं; **करिल निर्धार**—अनुमान लगाया।

अनुवाद

जब रघुपति उपाध्याय ने श्री चैतन्य महाप्रभु के भाव-लक्षण देखे, तो उसे यह निश्चित हो गया कि महाप्रभु मनुष्य नहीं, अपितु साक्षात् कृष्ण हैं।

प्रभु कहे,——उपाध्याय, श्रेष्ठ मान' काय? ।
'श्याममेव परं रूपं'——कहे उपाध्याय ॥ १०१ ॥

प्रभु कहे,——उपाध्याय, श्रेष्ठ मान' काय? ।
'श्याममेव परं रूपं'——कहे उपाध्याय ॥ १०१ ॥

प्रभु कहे—श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा; **उपाध्याय**—मेरे प्रिय उपाध्याय; **श्रेष्ठ**—श्रेष्ठ; **मान'**—तुम समझते हो; **काय**—क्या; **श्याममम्**—श्यामसुन्दर भगवान् कृष्ण; **एव**—निस्सन्देह; **परम् रूपम्**—परम सुन्दर; **कहे**—उत्तर दिया; **उपाध्याय**—रघुपति उपाध्याय ने।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुपति उपाध्याय से पूछा, "तुम्हारे मत के अनुसार सर्वश्रेष्ठ हस्ती कौन है?" रघुपति उपाध्याय ने उत्तर दिया, "भगवान् श्यामसुन्दर ही सर्वश्रेष्ठ स्वरूप हैं।"

श्याम-रूपेर वास-स्थान श्रेष्ठ मान' काय? ।
'पुरी मधु-पुरी वरा'——कहे उपाध्याय ॥ १०२ ॥

श्याम-रूपेर वास-स्थान श्रेष्ठ मान' काय? ।
'पुरी मधु-पुरी वरा'—कहे उपाध्याय ॥ १०२॥

श्याम-रूपेर—सर्वोपरि रूप श्यामसुन्दर का; **वास-स्थान**—निवासस्थान; **श्रेष्ठ**—श्रेष्ठ; **मान'**—तुम मानते हो; **काय**—कौन सा; **पुरी**—नगर; **मधु-पुरी**—मथुरा; **वरा**—सर्वश्रेष्ठ; **कहे**—कहा; **उपाध्याय**—रघुपति उपाध्याय ने।

अनुवाद

"कृष्ण के समस्त धामों में से तुम किसे सर्वश्रेष्ठ मानते हो?" इसके उत्तर में रघुपति उपाध्याय ने कहा, "मधुपुरी अर्थात् मथुरा धाम निश्चित रूप से सर्वश्रेष्ठ है।"

तात्पर्य

जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* (५.३३) में कहा गया है, भगवान् कृष्ण के अनेक रूप हैं—*अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपम्।* श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुपति उपाध्याय से पूछा कि भगवान् कृष्ण के लाखों रूपों में से कौन-सा सर्वश्रेष्ठ रूप है, तो उसने तुरन्त उत्तर दिया कि श्यामसुन्दर रूप सर्वश्रेष्ठ है। इस रूप में कृष्ण तीन तीन स्थानों से टेढ़े बनकर खड़े होते हैं और अपनी मुरली लिये रहते हैं। *ब्रह्म-संहिता* (५.३८) में भी श्यामसुन्दर रूप का वर्णन हुआ है :

प्रेमाञ्जनच्छुरित भक्तिविलोचनेन
सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।
यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जो उन भक्तों को सदैव दर्शन देते हैं, जिनकी आँखों में प्रेम का अंजन लगा रहता है। वे भक्त के हृदय में स्थित श्यामसुन्दर के सनातन रूप में दर्शन देते हैं।"

जो कृष्ण-प्रेम से पूरित हैं, वे अपने हृदयों में निरन्तर श्यामसुन्दर स्वरूप का दर्शन करते हैं। रघुपति उपाध्याय पुष्टि करते हैं कि परम सत्य के अनेक अवतार होते हैं—नारायण, नृसिंह, वराह आदि—किन्तु इनमें कृष्ण सर्वोपरि हैं। *श्रीमद्भागवत* (१.३.२८) के अनुसार—*कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्*—"कृष्ण आदि भगवान् हैं।" कृष्ण का अर्थ है श्यामसुन्दर, जो वृन्दावन में मुरली बजाते

हैं। समस्त रूपों में यह रूप सर्वश्रेष्ठ है। कृष्ण कभी मथुरा में रहते हैं तो कभी द्वारका में, किन्तु इनमें से मथुरा श्रेष्ठतर स्थान है। इसकी पुष्टि रूप गोस्वामी ने अपनी पुस्तक *उपदेशामृत* (९) में भी की है—*वैकुण्ठाज्जनितो वरा मधुपरी*—मधुपुरी या मथुरा वैकुण्ठ लोकों से कहीं अच्छी है।

বাল্য, পৌগণ্ড, কৈশোরে, শ্রেষ্ঠ মান' কায়? ।
'বয়ঃ কৈশোরকং ধ্যেয়ং'—কহে উপাধ্যায় ॥ ১০৩ ॥

বাল্য, পৌগণ্ড, কৈশোরে, শ্রেষ্ঠ মান' কায়? ।
'বয়ঃ কৈশোরকং ধ্যেয়ং'—কহে উপাধ্যায় ॥ ১০৩ ॥

বাল্য—বাল্যাবস্থা; **পৌগণ্ড**—কিশোরাবস্থা से पूर्व की अवस्था; **কৈশোরে**—युवावस्था का आरम्भ; **শ্রেষ্ঠ**—सर्वश्रेष्ठ; **মান'**—तुम्हारे विचार में; **কায়**—कौन सी है; **বয়ঃ**—आयु; **কৈশোরকম্**—किशोरावस्था अथवा युवावस्था; **ধ্যেয়ম্**—सर्वाधिक पूज्य; **কহে**—कहा; **উপাধ্যায়**—रघुपति उपाध्याय ने।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रश्न किया, "कृष्ण की बाल्यावस्था, पौगण्डावस्था तथा कैशोरावस्था—इन तीनों में से तुम किसे सर्वश्रेष्ठ मानते हो?" रघुपति उपाध्याय ने उत्तर दिया, "कैशोर अवस्था सर्वश्रेष्ठ है।"

রস-গণ-মধ্যে তুমি শ্রেষ্ঠ মান' কায়? ।
'আদ্য এব পরো রসঃ'—কহে উপাধ্যায় ॥ ১০৪ ॥

রস-গণ-মধ্যে তুমি শ্রেষ্ঠ মান' কায়? ।
'আদ্য এব পরো রসঃ'—কহে উপাধ্যায় ॥ ১০৪ ॥

রস-গণ-মধ্যে—सभी रसों के मध्य; **তুমি**—तुम; **শ্রেষ্ঠ**—श्रेष्ठ; **মান'**—मानते हो; **কায়**—किसे; **আদ্যঃ**—माधुर्य प्रेम; **এব**—निस्सन्देह; **পরঃ রসঃ**—सभी रसों में सर्वश्रेष्ठ; **কহে**—उत्तर दिया; **উপাধ্যায়**—रघुपति उपाध्याय ने।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "समस्त रसों में तुम किस रस को

सर्वश्रेष्ठ मानते हो?" तो रघुपति उपाध्याय ने उत्तर दिया, "माधुर्य रस ही सर्वोपरि है।"

প্রভু কহে,—ভাল তত্ত্ব শিখাইলা মোরে ।
এত বলি' শ্লোক পড়ে গদগদ-স্বরে ॥ ১০৫ ॥

प्रभु कहे,—भाल तत्त्व शिखाइला मोरे ।
एत बलि' श्लोक पड़े गद्‌गद-स्वरे ॥ १०५ ॥

प्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **कहे**—कहा; **भाल**—अच्छा; **तत्त्व**—निष्कर्ष; **शिखाइला मोरे**—तुमने मुझे सिखाया है; **एत बलि'**—यह कहकर; **श्लोक पड़े**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूरा श्लोक पढ़ा; **गद्‌गद-स्वरे**—लड़खड़ाती आवाज में।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "तुमने निश्चित रूप से उच्च कोटि के निर्णय दिये हैं।" यह कहकर वे लड़खड़ाते स्वर में पूरा श्लोक सुनाने लगे।

শ্যামমেব পরং রূপং পুরী মধু-পুরী বরা ।
বয়ঃ কৈশোরকং ধ্যেয়মাদ্য এব পরো রসঃ ॥ ১০৬ ॥

श्याममेव परं रूपं पुरी मधु-पुरी वरा ।
वयः कैशोरकं ध्येयमाद्य एव परो रसः ॥ १०६ ॥

श्यामम्—श्यामसुन्दर का रूप; **एव**—निस्सन्देह; **परम्**—परम; **रूपम्**—स्वरूप; **पुरी**—स्थान; **मधु-पुरी**—मथुरा; **वरा**—सर्वश्रेष्ठ; **वयः**—आयु; **कैशोरकम्**—किशोरावस्था (युवावस्था का आरम्भ); **ध्येयम्**—हमेशा ध्यान योग्य; **आद्यः**—मूल दिव्य रस अथवा माधुर्य रस; **एव**—ही; **परः**—सर्वश्रेष्ठ; **रसः**—रस है।

अनुवाद

"'श्यामसुन्दर रूप सर्वश्रेष्ठ रूप है, मथुरापुरी सर्वश्रेष्ठ धाम है, कृष्ण की कैशोरावस्था सदा ध्यान करने योग्य है और माधुर्य रस ही सर्वश्रेष्ठ रस है।'"

तात्पर्य

यह श्लोक *पद्यावली* (८२) में पाया जाता है।

প্রেমাবেশে প্রভু তাঁরে কৈলা আলিঙ্গন ।
প্রেম মত্ত হঞা তেঁহো করেন নর্তন ॥ ১০৭ ॥

प्रेमावेशे प्रभु ताँरे कैला आलिङ्गन ।
प्रेम मत्त हञा तेंहो करेन नर्तन ॥ १०७ ॥

प्रेम-आवेशे—प्रेमावेश में; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **ताँरे**—उसको; **कैला**—किया; **आलिङ्गन**—आलिंगन; **प्रेम मत्त हञा**—प्रेम में उन्मत्त होकर; **तेंहो**—वह; **करेन नर्तन**—नृत्य करने लगा।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रेमावेश में रघुपति उपाध्याय का आलिंगन किया। रघुपति उपाध्याय भी प्रेम में विभोर होकर नाचने लगे।

দেখি' বল্লভ-ভট্ট মনে চমৎকার হৈল ।
দুই পুত্র আনি' প্রভুর চরণে পাড়িল ॥ ১০৮ ॥

देखि' वल्लभ-भट्ट मने चमत्कार हैल ।
दुइ पुत्र आनि' प्रभुर चरणे पाड़िल ॥ १०८ ॥

देखि'—देखकर; **वल्लभ-भट्ट**—वल्लभ भट्टाचार्य के; **मने**—मन में; **चमत्कार हैल**—आश्चर्य हुआ; **दुइ पुत्र आनि'**—अपने दोनों पुत्रों को लाकर; **प्रभुर चरणे पाड़िल**—श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में डाल दिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रघुपति उपाध्याय को नाचते देखकर वल्लभ भट्टाचार्य आश्चर्यचकित हो गये। वे अपने दोनों पुत्रों को ले आये और उन्हें महाप्रभु के चरणकमलों में डाल दिया।

तात्पर्य

वल्लभाचार्य के दो पुत्र थे—गोपीनाथ तथा विठ्ठलेश्वर। जब श्री चैतन्य महाप्रभु १४३४ या १४३५ शकाब्द (१५१२ या १५१३ ई.) में प्रयाग आये थे, तब उस समय तक विट्ठलेश्वर का जन्म नहीं हुआ था। इस सम्बन्ध में मध्यलीला १८.४७ देखना चाहिए।

প্রভু দেখিবারে গ্রামের সব-লোক আইল ।
প্রভু-দরশনে সবে 'কৃষ্ণ-ভক্ত' হইল ॥১০৯॥

প্রভু দেখিবারে গ্রামের সব-লোক আইল ।
প্রভু-দরশনে সবে 'কৃষ্ণ-ভক্ত' হইল ॥১০৯॥

প্রভু দেখিবারে—श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने के लिए; **ग्रामेर**—गाँव के; **सब-लोक**—सभी लोग; **आइल**—आये; **प्रभु-दरशने**—मात्र श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करने से; **सबे**—वे सभी; **कृष्ण-भक्त हइल**—कृष्ण भक्त हो गये।

अनुवाद

यह सुनकर कि श्री चैतन्य महाप्रभु आये हुए हैं, सारे ग्रामवासी उनका दर्शन करने के लिए आये। उनका दर्शन करने मात्र से वे सभी कृष्ण-भक्त बन गये।

ব্রাহ্মণ-সকল করেন প্রভুর নিমন্ত্রণ ।
বল্লভ-ভট্ট তাঁ-সবারে করেন নিবারণ ॥১১০॥

ব্রাহ্মণ-সকল করেন প্রভুর নিমন্ত্রণ ।
বল্লভ-ভট্ট তাঁ-সবারে করেন নিবারণ ॥১১০॥

ब्राह्मण-सकल—उस गाँव के सभी ब्राह्मण; **करेन**—करने लगे; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **निमन्त्रण**—निमन्त्रण; **वल्लभ-भट्ट**—वल्लभ भट्टाचार्य ने; **ताँ-सबारे**—उन सबको; **करेन**—किया; **निवारण**—मना।

अनुवाद

गाँव के सारे ब्राह्मण महाप्रभु को निमन्त्रण देने के लिए उत्सुक थे, किन्तु वल्लभ भट्टाचार्य ने उन सबको ऐसा करने से मना कर दिया।

'প্রেমোন্মাদে পড়ে গোসাঞি মধ্য-যমুনাতে ।
প্রয়াগে চালাইব, ইহাঁ না দিব রহিতে ॥১১১॥

'প্রেমোন্মাদে পড়ে গোসাঞি মধ্য-যমুনাতে ।
প্রয়াগে চালাইব, ইহাঁ না দিব রহিতে ॥১১১॥

प्रेम-उन्मादे—प्रेमावेश के उन्माद में; **पड़े**—गिर पड़े; **गोसाञि**—श्री चैतन्य महाप्रभु;

मध्य-यमुनाते—यमुना नदी में; **प्रयागे चालाइब**—मैं उन्हें फिर प्रयाग ले जाऊँगा; **इहाँ**—यहाँ; **ना**—नहीं; **दिब**—दूँगा; **रहिते**—रहने।

अनुवाद

तब वल्लभ भट्ट ने श्री चैतन्य महाप्रभु को आड़ाइल में न रखने का निश्चय किया, क्योंकि महाप्रभु प्रेमावेश में यमुना नदी में कूद पड़े थे। इसलिए उन्होंने महाप्रभु को प्रयाग ले जाने का निश्चय किया।

यँार इच्छा, प्रयागे याञा करिबे निमन्त्रण' ।
एत बलि' प्रभु लञा करिल गमन ॥ ११२॥

यार्ँ इच्छा, प्रयागे याञा करिबे निमन्त्रण' ।
एत बलि' प्रभु लञा करिल गमन ॥ ११२॥

यार्ँ—जिसकी; **इच्छा**—इच्छा हो; **प्रयागे याञा**—प्रयाग जाकर; **करिबे**—कर ले; **निमन्त्रण**—निमन्त्रण; **एत बलि'**—यह कहकर; **प्रभु लञा**—श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; **करिल गमन**—वे प्रयाग के लिए निकल पड़े।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट ने कहा, "जिसकी इच्छा हो वह प्रयाग जा सकता है और महाप्रभु को निमन्त्रण दे सकता है।" इस तरह वे महाप्रभु को अपने साथ लेकर प्रयाग के लिए चल पड़े।

गङ्गा-पथे महाप्रभुरे नौकातेे वसाञा ।
प्रयागे आइला भट्ट गोसाञिरे लञा ॥ ११३॥

गङ्गा-पथे महाप्रभुरे नौकाते वसाञा ।
प्रयागे आइला भट्ट गोसाञिरे लञा ॥ ११३॥

गङ्गा-पथे—गंगा के रास्ते; **महाप्रभुरे**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **नौकाते वसाञा**—नौका में बैठाकर; **प्रयागे आइला**—प्रयाग चले गये; **भट्ट**—वल्लभ भट्ट; **गोसाञिरे लञा**—श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ।

अनुवाद

वल्लभ भट्टाचार्य, यमुना नदी से बचने के लिए, महाप्रभु को नाव में चढ़ाकर गंगा नदी से उनके साथ-साथ प्रयाग गये।

লোক-ভিড়-ভয়ে প্রভু 'দশাশ্বমেধে' যাঞা ।
রূপ-গোসাঞিরে শিক্ষা করা'ন শক্তি সঞ্চারিয়া ॥ ১১৪ ॥

লোক-ভিড়-ভয়ে প্রভু 'দশাশ্বমেধে' য়াঞা ।
রূপ-গোসাঞিরে শিক্ষা করা'ন শক্তি সঞ্চারিয়া ॥ ११४ ॥

লোক-ভিড়-ভয়ে—লোগों की भीड़ के डर से; **প্রভু**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **দশাশ্বমেধে**—दशाश्वमेध घाट में; **য়াঞা**—जाकर; **রূপ-গোসাঞিরে**—रूप गोस्वामी को; **শিক্ষা করা'ন**—शिक्षा दी; **শক্তি সঞ্চারিয়া**—उसे शक्ति से आवेशित करके।

अनुवाद

प्रयाग में भारी भीड़ होने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु दशाश्वमेध घाट गये। यहीं पर उन्होंने श्री रूप गोस्वामी को शिक्षा दी और भक्तियोग-दर्शन में उनमें शक्ति का संचार किया।

तात्पर्य

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते। भगवान् की अनन्त शक्तियाँ हैं, जिन्हें वे अपने भाग्यशाली भक्तों को प्रदान करते हैं। भगवान् के पास विशेष शक्ति होती है, जिससे वे कृष्णभावनामृत आन्दोलन का विस्तार करते हैं। *चैतन्य-चरितामृत* (अन्त्य ७.११) में इसकी विवेचना की गई है : *कलिकालेर धर्म—कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन / कृष्णशक्ति विना नहे तार प्रवर्तन*—"भगवान् कृष्ण से विशेष शक्ति प्राप्त किये बिना कृष्ण-नाम का प्रसार कोई नहीं कर सकता।" जिस भक्त को भगवान् से यह शक्ति प्राप्त होती है, उसे अत्यन्त भाग्यशाली समझना चाहिए। कृष्णभावनामृत आन्दोलन लोगों को उनकी असली स्थिति समझाने—भगवान् कृष्ण के साथ अपने मूल सम्बन्ध को समझाने के लिए विस्तार कर रहा है। ऐसा करने के लिए मनुष्य को कृष्ण से विशेष शक्ति प्राप्त करने की आवश्यकता है। लोग कृष्ण से अपने सम्बन्ध को भूल जाते हैं और जन्म-जन्मांतर माया के पाश में बँधकर कार्य करते हैं और एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रविष्ट होते रहते हैं। यही भौतिक अस्तित्व की रीति है। परम भगवान् श्रीकृष्ण लोगों को यह शिक्षा देने के लिए अवतरित होते हैं कि भौतिक जगत् में उनकी स्थिति भ्रान्त है। भगवान् पुनः श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में लोगों को कृष्णभावना अपनाने के लिए प्रेरित करने हेतु आते हैं। वे विशेष भक्त को

शक्ति भी प्रदान करते हैं, जिससे वह लोगों को उनकी वैधानिक स्थिति बतला सके।

कृष्णतत्त्व-भक्तितत्त्व-रसतत्त्व-प्रान्त ।
सब शिखाइल प्रभु भागवत-सिद्धान्त ॥ ११५॥

कृष्णतत्त्व-भक्तितत्त्व-रसतत्त्व-प्रान्त ।
सब शिखाइल प्रभु भागवत-सिद्धान्त ॥ ११५॥

कृष्ण-तत्त्व—भगवान् कृष्ण के तत्त्व के बारे में; **भक्ति-तत्त्व**—भक्ति तत्त्व के बारे में; **रस-तत्त्व**—दिव्य रसों के बारे में; **प्रान्त**—अन्तिम सीमा; **सब**—सब; **शिखाइल**—सिखाया; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **भागवत-सिद्धान्त**—*श्रीमद्भागवत* के सिद्धान्त।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी को कृष्णतत्त्व, भक्तितत्त्व तथा रसतत्त्व की चरम सीमा की शिक्षा दी, जिसकी चरम परिणति राधा तथा कृष्ण के माधुर्य प्रेम में होती है। अन्त में उन्होंने रूप गोस्वामी से श्रीमद्भागवत् के चरम सिद्धान्त कहे।

रामानन्द-पाशे यत सिद्धान्त शुनिला ।
रूपे कृपा करि' ताहा सब सञ्चारिला ॥ ११६॥

रामानन्द-पाशे यत सिद्धान्त शुनिला ।
रूपे कृपा करि' ताहा सब सञ्चारिला ॥ ११६॥

रामानन्द-पाशे—रामानन्द राय से; **यत**—सब; **सिद्धान्त**—आखरी सिद्धान्त; **शुनिला**—उन्होंने सुने; **रूपे**—श्री रूप गोस्वामी को; **कृपा करि'**—अपनी अहैतुकी कृपा दिखाकर; **ताहा सब**—वे सब; **सञ्चारिला**—संचारित किये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से जितने भी सिद्धान्त सुने थे, उन सबको रूप गोस्वामी को सिखलाया और उन्हें भलीभाँति शक्ति प्रदान की, जिससे वे उन्हें समझ सकें।

শ্রী-রূপ-হৃদয়ে প্রভু শক্তি সঞ্চারিলা ।
সর্ব-তত্ত্ব-নিরূপণে 'প্রবীণ' করিলা ॥ ১১৭॥

श्री-रूप-हृदये प्रभु शक्ति सञ्चारिला ।
सर्व-तत्त्व-निरूपणे 'प्रवीण' करिला ॥ ११७॥

श्री-रूप-हृदये—श्रील रूप गोस्वामी के हृदय में; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **शक्ति सञ्चारिला**—आध्यात्मिक शक्ति संचारित की; **सर्व-तत्त्व**—सभी सिद्धान्त; **निरूपणे**—जानने के लिए; **प्रवीण करिला**—उन्हें पूर्णरूपेण अनुभवी बनाया।

अनुवाद

रूप गोस्वामी के हृदय में प्रवेश करके श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें समस्त सत्यों के सिद्धान्तों के तत्त्व से समझने की शक्ति प्रदान की। महाप्रभु ने उन्हें अनुभवी भक्त बना दिया, जिनके निर्णय गुरु-शिष्य परम्परा के निर्णयों से अनुरूप थे। इस प्रकार श्री रूप गोस्वामी को स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु ने शक्ति प्रदान की।

तात्पर्य

भक्ति के सिद्धान्त केवल बाह्य रूप से भौतिक कर्म के अन्तर्गत आते हैं। ठीक से मार्गदर्शन के लिए मनुष्य को श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण लेनी चाहिए। श्रील रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी तथा अन्य आचार्यों के साथ ऐसा ही हुआ।

শিবানন্দ-সেনের পুত্র 'কবি-কর্ণপূর' ।
'রূপের মিলন' স্ব-গ্রন্থে লিখিয়াছেন প্রচুর ॥ ১১৮॥

শিবানন্দ-সেনের পুত্র 'কবি-কর্ণপূর' ।
'রূপের মিলন' স্ব-গ্রন্থে লিখিয়াছেন প্রচুর ॥ ১১৮॥

শিবানন্দ-সেনের—শিবানন্দ सेन के; **পুত্র**—पुत्र; **কবি-কর্ণপূর**—कवि कर्णपूर; **রূপের মিলন**—रूप गोस्वामी के साथ मिलन के बारे में; **স্ব-গ্রন্থে**—अपने ग्रन्थ में; **লিখিয়াছেন প্রচুর**—बहुत विस्तार से लिखा है।

अनुवाद

शिवानन्द सेन के पुत्र कवि कर्णपूर ने अपनी पुस्तक चैतन्य-चन्द्रोदय

में श्री रूप गोस्वामी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के मिलन का विस्तार से वर्णन किया है।

कालेन वृन्दावन-केलि-वार्ता
लुप्तेति ताः ख्यापयितुं विशिष्य ।
कृपामृतेनाभिषिषेच देवस्
तत्रैव रूपं च सनातनं च ॥११९॥

कालेन वृन्दावन-केलि-वार्ता
लुप्तेति तां ख्यापयितुं विशिष्य ।
कृपामृतेनाभिषिषेच देवस्
तत्रैव रूपं च सनातनं च ॥११९॥

कालेन—समय के बीतने पर; **वृन्दावन-केलिवार्ता**—वृन्दावन में भगवान् कृष्ण की लीलाओं के दिव्य रस से सम्बन्धित विषय; **लुप्ता**—लुप्त प्रायः हो गये; **इति**—इस प्रकार; **ताम्**—उन सबको; **ख्यापयितुम्**—स्पष्ट रूप से बताना; **विशिष्य**—विशेष रूप से; **कृपा-अमृतेन**—दया रूपी अमृत के साथ; **अभिषिषेच**—सिंचित करके; **देवः**—महाप्रभु ने; **तत्र**—वहाँ, वृन्दावन में; **एव**—निस्सन्देह; **रूपम्**—श्रील रूप गोस्वामी; **च**—और; **सनातनम्**—सनातन गोस्वामी; **च**—और।

अनुवाद

"कालक्रम में वृन्दावन में कृष्ण की लीलाओं के दिव्य सन्देश लुप्तप्राय हो गये थे। इन दिव्य लीलाओं की स्पष्ट रूप से स्थापना करने के लिए ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रयाग में श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी को अपनी कृपा का अमृत प्रदान किया, जिससे वे वृन्दावन में यह कार्य सम्पन्न कर सकें।"

तात्पर्य

यह श्लोक तथा अगले दो श्लोक श्री कविकर्णपूर कृत *चैतन्य-चन्द्रोदय* के नवें अंक (३८, २९, ३०) से लिये गये हैं।

यः प्रागेव प्रिय-गुण-गणैर्गाढ़-बद्धोऽपि मुक्तो
गेहाध्यासाद्रस इव परो मूर्त एवाप्यमूर्तः ।

प्रेमालापैर्दृढ़तर-परिष्वङ्ग-रङ्गैः प्रयागे
तं श्री-रूपं सममनुपमेनानुजग्राह देवः ॥ १२० ॥

यः प्रागेव प्रिय-गुण-गणैर्गाढ़-बद्धोऽपि मुक्तो
गेहाध्यासाद्रस इव परो मूर्त एवाप्यमूर्तः ।
प्रेमालापैर्दृढ़तर-परिष्वङ्ग-रङ्गैः प्रयागे
तं श्री-रूपं सममनुपमेनानुजग्राह देवः ॥ १२० ॥

यः—जो; **प्राक् एव**—पहले ही; **प्रिय-गुण-गणैः**—श्री चैतन्य महाप्रभु के वांछनीय दिव्य गुणों से; **गाढ़**—गहरे रूप में; **बद्धः**—आसक्त; **अपि**—यद्यपि; **मुक्तः**—मुक्त; **गेह-अध्यासात्**—पारिवारिक जीवन के बन्धन से; **रसः**—दिव्य रस; **इव**—के समान; **परः**—दिव्य; **मूर्तः**—निजी रूप; **एव**—निश्चय ही; **अपि**—यद्यपि; **अमूर्तः**—भौतिक रूप के बिना; **प्रेम-आलापैः**—भगवान् के दिव्य प्रेम की चर्चाओं द्वारा; **दृढ़-तर**—दृढ़; **परिष्वङ्ग**—आलिंगन का; **रङ्गैः**—बड़े आनन्द के साथ; **प्रयागे**—प्रयाग में; **तम्**—उनको; **श्री-रूपम्**—श्री रूप गोस्वामी के; **समम्**—के साथ; **अनुपमेन**—अनुपम; **अनुजग्राह**—कृपा दिखाई; **देवः**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने।

अनुवाद

"श्रील रूप गोस्वामी प्रारम्भ से ही श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य गुणों के प्रति अत्यन्त आकृष्ट थे। इस तरह उन्होंने गृहस्थ जीवन से स्थायी रूप से वैराग्य ले लिया। श्रील रूप गोस्वामी तथा उनके छोटे भाई वल्लभ को श्री चैतन्य महाप्रभु का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। यद्यपि महाप्रभु अपने दिव्य शाश्वत रूप में दिव्य पद को प्राप्त थे, किन्तु प्रयाग में उन्होंने रूप गोस्वामी को कृष्ण के दिव्य भावमय प्रेम के विषय में बतलाया। फिर महाप्रभु ने बड़े प्रेम से उनका आलिंगन किया और उन्हें अपनी पूर्ण कृपा प्रदान की।"

प्रिय-स्वरूपे दयित-स्वरूपे
प्रेम-स्वरूपे सहजाभिरूपे ।
निजानुरूपे प्रभुरेक-रूपे
ततान रूपे स्व-विलास-रूपे ॥ १२१ ॥

प्रिय-स्वरूपे दयित-स्वरूपे
प्रेम-स्वरूपे सहजाभिरूपे ।

निजानुरूपे प्रभुरेक-रूपे
ततान रूपे स्व-विलास-रूपे ॥ १२१ ॥

प्रिय-स्वरूपे—जिसके प्रिय मित्र श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी थे, उसका; **दयित-स्वरूपे**—जो श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय थे; **प्रेम-स्वरूपे**—उनके निजी प्रेम के स्वरूप को; **सहज-अभिरूपे**—जो स्वाभाविक रूप से बहुत सुन्दर थे; **निज-अनुरूपे**—जो पुरी तरह से श्री चैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्तों का अनुसरण करने वाले थे; **प्रभुः**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **एक-रूपे**—एकरूप; **ततान**—बताया; **रूपे**—रूप गोस्वामी को; **स्व-विलास-रूपे**—जो भगवान् कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करते हैं।

अनुवाद

"श्रील स्वरूप दामोदर के प्रिय मित्र, श्रील रूप गोस्वामी, श्री चैतन्य महाप्रभु की हूबहू अनुकृति थे और वे महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय थे। श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रेम की साक्षात् मूर्ति होने के कारण रूप गोस्वामी स्वाभाविक रूप से अत्यन्त सुन्दर थे। उन्होंने महाप्रभु द्वारा स्थापित सिद्धान्तों का सावधानी से पालन किया और वे भगवान् कृष्ण की लीलाओं की सही व्याख्या करने के लिए उपयुक्त व्यक्ति थे। श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन पर इसीलिए अपनी कृपादृष्टि डाली, ताकि वे दिव्य साहित्य की रचना करके सेवा कर सकें।"

এই-মত কর্ণপূর লিখে স্থানে-স্থানে ।
প্রভু কৃপা কৈলা যৈছে রূপ-সনাতনে ॥ ১২২ ॥
এइ-मत कर्णपूर लिखे स्थाने-स्थाने ।
प्रभु कृपा कैला ग्रैछे रूप-सनातने ॥ १२२ ॥

एइ-मत—इस प्रकार; **कर्णपूर**—कवि कर्णपूर ने; **लिखे**—लिखा है; **स्थाने-स्थाने**—कई स्थानों पर; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **कृपा कैला**—आपनी कृपा दिखाई; **ग्रैछे**—कैसे; **रूप-सनातने**—श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी पर।

अनुवाद

इस तरह कवि कर्णपूर ने जगह-जगह श्रील रूप गोस्वामी के गुणों का वर्णन किया है। उन्होंने इसका भी वर्णन किया है कि श्री चैतन्य

महाप्रभु ने किस तरह श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी को अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान की।

महाप्रभुर यत बड़ बड़ भक्त मात्र ।
रूप-सनातन——सबार कृपा-गौरव-पात्र ॥ १२३॥

महाप्रभुर यत बड़ बड़ भक्त मात्र ।
रूप-सनातन——सबार कृपा-गौरव-पात्र ॥ १२३॥

महाप्रभुर—श्री चैतन्य महाप्रभु के; **यत**—सब; **बड़ बड़**—बड़े बड़े; **भक्त**—भक्त; **मात्र**—मात्र; **रूप-सनातन**—श्रील रूप गोस्वामी एवं श्रील सनातन गोस्वामी; **सबार**—प्रत्येक की; **कृपा**—कृपा; **गौरव**—सम्मान; **पात्र**—पात्र।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के बड़े-बड़े भक्तों के प्रेम तथा सम्मान के पात्र थे।

केह यदि देशे याय देखि' वृन्दावन ।
ताँरे प्रश्न करेन प्रभुर पारिषद-गण ॥ १२४॥

केह यदि देशे याय देखि' वृन्दावन ।
ताँरे प्रश्न करेन प्रभुर पारिषद-गण ॥ १२४॥

केह—कोई; **यदि**—यदि; **देशे**—अपने देश को; **याय**—जाता है; **देखि'**—दर्शन करने के बाद; **वृन्दावन**—वृन्दावन; **ताँरे**—उस व्यक्ति को; **प्रश्न करेन**—प्रश्न पूछते; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु के; **पारिषद-गण**—पार्षदगण।

अनुवाद

यदि कोई वृन्दावन देखने के बाद अपने देश लौट आता, तो महाप्रभु के पार्षद उस व्यक्ति से प्रश्न करते।

"कह,——ताहाँ कैछे रहे रूप-सनातन? ।
कैछे रहे, कैछे वैराग्य, कैछे भोजन? ॥ १२५॥

"कह,——ताहाँ कैछे रहे रूप-सनातन? ।
कैछे रहे, कैछे वैराग्य, कैछे भोजन? ॥ १२५॥

कह—कृपया वर्णन करो; **ताहाँ**—वहाँ; **कैछे**—कैसे; **रहे**—रहते हैं; **रूप**—रूप गोस्वामी; **सनातन**—सनातन गोस्वामी; **कैछे रहे**—वे कैसे रहते हैं; **कैछे वैराग्य**—वैराग्य का पालन कैसे करते हैं; **कैछे भोजन**—वे भोजन कैसे करते हैं।

अनुवाद

वृन्दावन से लौटने वाले से वे पूछते, "वृन्दावन में रूप और सनातन कैसे हैं? संन्यास आश्रम में उनके कार्य कैसे हैं? वे किस तरह भोजन की व्यवस्था करते हैं?" वे इस प्रकार से पूछते थे।

कैछे अष्ट-प्रहर करेन श्री-कृष्ण-भजन?'' ।
तबे प्रशंसिया कहे सेइ भक्त-गण ॥१२६॥

कैछे अष्ट-प्रहर करेन श्री-कृष्ण-भजन?" ।
तबे प्रशंसिया कहे सेइ भक्त-गण ॥ १२६ ॥

कैछे—कैसे; **अष्ट-प्रहर**—चौबीसों घण्टे (आठों पहर); **करेन**—करते हैं; **श्री-कृष्ण-भजन**—श्रीकृष्ण का भजन; **तबे**—उस समय; **प्रशंसिया**—प्रशंसा करके; **कहे**—वर्णन करते; **सेइ भक्त-गण**—वे भक्त गण।

अनुवाद

महाप्रभु के पार्षद यह भी पूछते, "रूप तथा सनातन किस तरह चौबीसों घण्टे भक्ति में लगे रहते हैं?" उस समय वृन्दावन से होकर आने वाला व्यक्ति श्री रूप तथा सनातन गोस्वामी की प्रशंसा करता।

''अनिकेत दुँहे, वने यत वृक्ष-गण ।
एक एक वृक्षेर तले एक एक रात्रि शयन ॥१२७॥

"अनिकेत दुँहे, वने यत वृक्ष-गण ।
एक एक वृक्षेर तले एक एक रात्रि शयन ॥ १२७॥

अनिकेत—बिना घर के; **दुँहे**—वे दोनों; **वने**—वन में; **यत वृक्ष-गण**—जितने वृक्ष हैं; **एक एक वृक्षेर**—एक एक वृक्ष के; **तले**—नीचे; **एक एक रात्रि**—एक एक रात; **शयन**—सोते हुए।

अनुवाद

"उन दोनों भाइयों का कोई स्थायी निवासस्थान नहीं है। वे वृक्षों के

नीचे निवास करते हैं—एक रात एक वृक्ष के नीचे तो दूसरी रात दूसरे वृक्ष के नीचे।

'विप्र-गृहे' स्थूल-भिक्षा, काहाँ माधु-करी ।
शुष्क रुटी-चाना चिबाय भोग परिहरि' ॥१२८॥

'विप्र-गृहे' स्थूल-भिक्षा, काहाँ माधु-करी ।
शुष्क रुटी-चाना चिवाय भोग परिहरि' ॥ १२८ ॥

विप्र-गृहे—ब्राह्मण के घर में; **स्थूल-भिक्षा**—पूरा भोजन; **काहाँ**—कभी-कभी; **माधु-करी**—थोड़ा-थोड़ा भिक्षाटन करके, मधुमक्खियों की तरह; **शुष्क**—सूखी; **रुटी**—रोटी; **चाना**—चना; **चिवाय**—चबाते हैं; **भोग परिहरि'**—भौतिक सुख की सब प्रकार की वस्तुएँ त्यागकर।

अनुवाद

"श्रील रूप तथा सनातन गोस्वामी ब्राह्मणों के घरों से कुछ भोजन माँग लाते हैं। वे सारे भौतिक भोग का परित्याग करके सूखी रोटी तथा भुने चने ही ग्रहण करते हैं।

करोंया-मात्र हाते, काँथा छिँड़ा, बहिर्वास ।
कृष्ण-कथा, कृष्ण-नाम, नर्तन-उल्लास ॥१२९॥

करोंया-मात्र हाते, काँथा छिंड़ा, बहिर्वास ।
कृष्ण-कथा, कृष्ण-नाम, नर्तन-उल्लास ॥ १२९ ॥

करोंया—संन्यासी का जल पात्र; **मात्र**—केवल; **हाते**—हाथ में; **काँथा छिंड़ा**—फटी हुई रजाई; **बहिर्वास**—बाहरी कपड़े; **कृष्ण-कथा**—कृष्ण कथाओं की चर्चा; **कृष्ण-नाम**—भगवान् कृष्ण का पावन नाम का जप करते हुए; **नर्तन-उल्लास**—हर्ष में नृत्य करते हुए।

अनुवाद

'वे एकमात्र कमंडल लिये रहते हैं और फटी गुदड़ी ओढ़ते हैं। वे सदैव कृष्ण के पवित्र नाम का जप करते हैं और उनकी लीलाओं की चर्चा करते हैं। वे अति उल्लास से नृत्य भी करते हैं।

अष्ट-प्रहर कृष्ण-भजन, चारि दण्ड शयने ।
नाम-सङ्कीर्तने सेह नहे कोन दिने ॥१३०॥

अष्ट-प्रहर कृष्ण-भजन, चारि दण्ड शयने ।
नाम-सङ्कीर्तने सेह नहे कोन दिने ॥ १३० ॥

अष्ट-प्रहर—आठों प्रहर (चौबीसों घण्टे); **कृष्ण-भजन**—भगवान् कृष्ण का भजन करते हुए; **चारि दण्ड**—चार दण्ड (एक दण्ड चौबीस मिनट के बराबर); **शयने**—सोने के लिए; **नाम-सङ्कीर्तने**—भगवान् का नाम-संकीर्तन करने के कारण; **सेह**—उतना भी समय; **नहे**—नहीं; **कोन दिने**—कभी-कभी।

अनुवाद

"वे लगभग चौबीसों घण्टे भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं। वे केवल डेढ़ घंटा सोते हैं और कुछ दिनों तो, जब वे निरन्तर पवित्र नाम का कीर्तन करते हैं, तब बिल्कुल नहीं सोते।"

কভু ভক্তি-রস-শাস্ত্র করয়ে লিখন ।
চৈতন্য-কথা শুনে, করে চৈতন্য-চিন্তন'' ॥ ১৩১ ॥

কভু ভক্তি-রস-শাস্ত্র করয়ে লিখন ।
চৈতন্য-কথা শুনে, করে চৈতন্য-চিন্তন" ॥ ১৩১ ॥

কভু—कभी-कभी; **ভক্তি-রস-শাস্ত্র**—भक्ति रस से सम्बन्धित दिव्य साहित्य; **করয়ে লিখন**—लिखते हैं; **চৈতন্য-কথা**—श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के बारे में; **শুনে**—वे सुनते हैं; **করে**—करते हैं; **চৈতন্য-চিন্তন**—चैतन्य महाप्रभु का चिन्तन।

अनुवाद

"कभी वे भक्ति सम्बन्धी दिव्य साहित्य की रचना करते हैं, तो कभी वे श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में सुनते हैं और उन्हीं के विषय में चिन्तन करने में अपना सारा समय लगाते हैं।"

এই-কথা শুনি' মহান্তের মহা-সুখ হয় ।
চৈতন্যের কৃপা যাঁহে, তাঁহে কি বিস্ময়? ॥ ১৩২ ॥

এइ-কথা শুনি' মহান্তের মহা-সুখ হয় ।
চৈতন্যের কৃপা যাঁহে, তাঁহে কি বিস্ময়? ॥ ১৩২ ॥

এइ-কথা শুনি'—यह समाचार सुनकर; **মহান্তের**—सभी भक्तों को; **মহা-সুখ**—

अत्यन्त आनन्द; **हय**—हुआ; **चैतन्येर**—श्री चैतन्य महाप्रभु की; **कृपा**—कृपा; **याँहे**—जिस पर; **ताँहे**—उसमें; **कि**—क्या; **विस्मय**—आश्चर्य।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु के पार्षदगण रूप तथा सनातन गोस्वामियों के कार्यों के विषय में सुनते तो वे कहते, "उस व्यक्ति के लिए कौन-सी विस्मय की बात है, जिसे महाप्रभु की कृपा प्राप्त हो चुकी है?"

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी का कोई स्थायी निवासस्थान नहीं था। वे किसी एक वृक्ष के नीचे केवल एक दिन रहते और प्रचुर दिव्य साहित्य की रचना करते। वे न केवल पुस्तकों की रचना करते, अपितु जप करते, नृत्य करते, कृष्ण के विषय में चर्चा करते और श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का स्मरण करते। इस तरह वे भक्तिमयी सेवा सम्पन्न करते थे।

वृन्दावन में *प्राकृत सहजिये* हैं, जो यह कहते हैं कि पुस्तकें लिखना तो दूर, पुस्तकें छूना भी निषिद्ध है। उनके लिए भक्ति का अर्थ है इन कार्यों से मुक्ति पा जाना। जब उनसे वैदिक साहित्य का पाठ सुनने को कहा जाता है, तो वह यह कहकर मना करते हैं, "हमें दिव्य साहित्य के पढ़ने या सुनने से क्या प्रयोजन? यह तो नौसिखियों के लिए हैं।" वे अपने आपको इतना उच्च समझते हैं कि पढ़ने, लिखने तथा सुनने में वे शक्ति व्यय करना नहीं चाहते। किन्तु श्रील रूप गोस्वामी के मार्गनिर्देशन में शुद्ध भक्तगण इस सहजिया दर्शन को रद्द करते हैं। यह निश्चित रूप से सही बात है कि धन या यश के लिए ग्रन्थ की रचना नहीं करनी चाहिए, किन्तु जनता को ज्ञान देने के लिए पुस्तकें लिखना तथा छापना भगवान् की वास्तविक सेवा है। यही मत श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का था और उन्होंने अपने शिष्यों से पुस्तक लिखने के लिए विशेष रूप से कहा है। वे मन्दिरों की स्थापना करने के स्थान पर पुस्तकें प्रकाशित करना अधिक पसन्द करते थे। मन्दिर तो जनता तथा नौसिखिये भक्तों के लिए बनवाये जाते हैं, किन्तु महान् तथा शक्तिप्रदत्त भक्तों का काम पुस्तकें लिखना, उन्हें छापना तथा उनका व्यापक रूप से वितरण करना है। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुसार पुस्तक वितरण बड़े मृदंग को बजाने

के समान है। इसीलिए हम अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के सदस्यों से अधिकाधिक पुस्तकें छापने और संसार-भर में वितरित करने के लिए अनुरोध करते हैं। इस तरह श्रील रूप गोस्वामी के पदचिह्नों पर चलकर मनुष्य *रूपानुग* भक्त बन सकता है।

চৈতন্যের কৃপা রূপ লিখিয়াছেন আপনে ।
রসামৃত-সিন্ধু-গ্রন্থের মঙ্গলাচরণে ॥ ১৩৩ ॥

চৈতন্যের কৃপা রূপ লিখিয়াছেন আপনে ।
রসামৃত-সিন্ধু-গ্রন্থের মঙ্গলাচরণে ॥ ১৩৩ ॥

চৈতন্যের—श्री चैतन्य महाप्रभु की; **कृपा**—कृपा; **रूप**—श्रील रूप गोस्वामी; **लिखियाछेन**—लिखा है; **आपने**—स्वयं; **रसामृत-सिन्धु-ग्रन्थेर**—*भक्तिरसामृतसिन्धु* ग्रन्थ के; **मङ्गल-आचरणे**—शुभ मंगलाचरण में।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने स्वयं ही अपनी पुस्तक भक्तिरसामृतसिन्धु (१.१.२) के मंगलाचरण में श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा के विषय में लिखा है।

হৃদি যস্য প্রেরণয়া
প্রবর্তিতোঽহং বরাক-রূপোঽপি ।
তস্য হরেঃ পদ-কমলং
বন্দে চৈতন্য-দেবস্য ॥ ১৩৪ ॥

হৃদি যস্য প্রেরণয়া
প্রবর্তিতোঽহং বরাক-রূপোঽপি ।
তস্য হরেঃ পদ-কমলং
বন্দে চৈতন্য-দেবস্য ॥ ১৩৪ ॥

হৃদি—हृदय में; **যস্য**—जिसके (पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् जो अपने शुद्ध भक्तों को बुद्धि प्रदान करते हैं, ताकि वे कृष्णभावनामृत का प्रसार कर सकें); **প্রেরণয়া**—प्रेरणा से; **প্রবর্তিতঃ**—लगा हूँ; **অহম্**—मैं; **বরাক**—तुच्छ और निम्न; **রূপঃ**—रूप गोस्वामी; **অপি**—यद्यपि; **তস্য**—उनका; **হরেঃ**—जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि हैं; **পদ-কমলম্**—चरणकमलों की; **বন্দে**—मैं प्रार्थना करता हूँ; **চৈতন্য-দেবস্য**—श्री चैतन्य महाप्रभु के।

अनुवाद

"यद्यपि मैं मनुष्यों में सबसे नीच हूँ और मुझे कोई ज्ञान नहीं है, किन्तु मुझे भक्ति विषयक दिव्य ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा कृपापूर्वक दी गई है। अतएव मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर नमस्कार करता हूँ, क्योंकि उन्होंने ही मुझे इन ग्रन्थों की रचना करने का अवसर प्रदान किया है।"

এই-মত দশ-দিন প্রয়াগে রহিয়া ।
শ্রী-রূপে শিক্ষা দিল শক্তি সঞ্চারিয়া ॥১৩৫॥

এই-মত দশ-দিন প্রয়াগে রহিয়া ।
শ্রী-রূপে শিক্ষা দিল শক্তি সঞ্চারিয়া ॥ ১৩৫ ॥

এই-মত—इस प्रकार; **দশ-দিন**—दस दिन तक; **প্রয়াগে**—प्रयाग में; **রহিয়া**—रहकर; **শ্রী-রূপে**—श्रील रूप गोस्वामी को; **শিক্ষা**—शिक्षा; **দিল**—दी; **শক্তি সঞ্চারিয়া**—उन्हें आवश्यक शक्ति प्रदान करके।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रयाग में दस दिन रहे और उन्होंने रूप गोस्वामी को आवश्यक शक्ति प्रदान करते हुए शिक्षा दी।

तात्पर्य

यह तो *कृष्णशक्ति विना नहे तार प्रवर्तन*—इस कथन की पुष्टि स्वरूप है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से विशेष शक्ति प्राप्त किये बिना कृष्णभावनामृत आन्दोलन का विस्तार नहीं किया जा सकता। शक्ति प्राप्त भक्त अपने आपको अत्यन्त दीन व्यक्ति अनुभव करता है, क्योंकि वह यह जानता है कि वह जो कुछ भी करता है, वह भगवान् द्वारा हृदय में दी जाने वाली प्रेरणा से कर रहा है। भगवान् कृष्ण द्वारा *भगवद्गीता* (१०.१०) में भी इसकी पुष्टि हुई है :

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

"जो लोग निरन्तर प्रेमपूर्वक मेरी पूजा में लगे रहते हैं, उन्हें मैं ऐसी बुद्धि प्रदान करता हूँ, जिससे वे मेरे पास आ सकते हैं।"

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा शक्ति-प्रदत्त होने के लिए मनुष्य को योग्य बनना होता है। इसका अर्थ यह होता है कि मनुष्य चौबीसों घण्टे भगवान् की प्रेमाभक्ति में लगा रहे। भक्त की भौतिक स्थिति से भक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि भक्ति किसी भौतिक दृष्टिकोण पर आश्रित नहीं होती। श्रील रूप गोस्वामी अपने पूर्ववर्ती जीवन में सरकारी अफसर तथा गृहस्थ थे। वे ब्रह्मचारी या संन्यासी भी नहीं थे। वे यवनों तथा म्लेच्छों से सम्बन्धित थे, किन्तु वे सेवा करने के लिए सदैव उत्सुक रहते थे, इसलिए वे भगवत्कृपा प्राप्त करने के पात्र थे। अत: निष्ठावान भक्त को उसकी स्थिति पर विचार किए बिना भगवान् द्वारा शक्ति प्रदान की जाती है। *भक्तिरसामृतसिन्धु* के पिछले श्लोक में श्रील रूप गोस्वामी ने बतलाया है कि स्वयं महाप्रभु ने किस प्रकार उन्हें शक्ति प्रदान की। *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.२.१८७) में ही वे आगे कहते हैं :

ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा।
निखिलाष्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्त: स उच्यते॥

"अपने शरीर, मन तथा वाणी से कृष्ण की सेवा करने वाला व्यक्ति इस भौतिक जगत् में रहते हुए भी मुक्त होता है, भले ही वह अनेकानेक तथाकथित भौतिक कार्यों में क्यों न लगा हो।"

भौतिक कल्मष से अपने आपको मुक्त रखने तथा भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिए मनुष्य को भगवान् की सेवा करने के लिए निष्ठापूर्वक उत्सुक रहना चाहिए। यही एक मात्र आवश्यक योग्यता है। ज्योंही उसे गुरु तथा भगवान् की कृपा प्राप्त होती है, उसे भौतिक परिस्थितियों से अवरुद्ध हुए बिना, पुस्तकें लिखने तथा कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार करने के लिए आवश्यक शक्ति प्रदान की जाती है।

প্রভু কহে,—শুন, রূপ, ভক্তি-রসের লক্ষণ ।
সূত্র-রূপে কহি, বিস্তার না যায় বর্ণন ॥১৩৬॥

प्रभु कहे,—शुन, रूप, भक्ति-रसेर लक्षण ।
सूत्र-रूपे कहि, विस्तार ना याय वर्णन ॥ १३६ ॥

प्रभु कहे—श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **शुन**—कृपया सुनो; **रूप**—मेरे प्यारे रूप; **भक्ति**-

रसेर—भक्ति में दिव्य रस के; **लक्षण**—लक्षण; **सूत्र-रूपे**—सार रूप में; **कहि**—मैं बताऊँगा; **विस्तार**—सारा विस्तार; **ना**—नहीं; **ग्राय**—सम्भव है; **वर्णन**—वर्णन करना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे प्रिय रूप, कृपया मेरी बात सुनो। भक्ति का पूरी तरह वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है; अतएव मैं तुम्हें भक्ति के लक्षणों का सारांश बताने का प्रयास कर रहा हूँ।

पारापार-शून्य गभीर भक्ति-रस-सिन्धु ।
तोमाय चाखाइते तार कहि एक 'बिन्दु' ॥ १३७॥

पारापार-शून्य गभीर भक्ति-रस-सिन्धु ।
तोमाय चाखाइते तार कहि एक 'बिन्दु' ॥ १३७॥

पार-अपार—लम्बाई चौड़ाई; **शून्य**—रहित; **गभीर**—गहरी; **भक्ति-रस**—भक्ति के रसों का; **सिन्धु**—सागर; **तोमाय**—तुम्हें; **चाखाइते**—चखाने के लिए; **तार**—इस सागर का; **कहि**—मैं कहूँगा; **एक**—एक; **बिन्दु**—बिन्दु।

अनुवाद

"भक्तिरस का सागर इतना विस्तृत है कि कोई इसकी लम्बाई-चौड़ाई का अनुमान नहीं लगा सकता। फिर भी तुम्हें इसका आस्वादन कराने के लिए मैं उसकी एक बूँद का वर्णन कर रहा हूँ।

एइत ब्रह्माण्ड भरि' अनन्त जीव-गण ।
चौरासी-लक्ष योनिते करये भ्रमण ॥ १३८॥

एइत ब्रह्माण्ड भरि' अनन्त जीव-गण ।
चौराशी-लक्ष ग्रोनिते करये भ्रमण ॥ १३८॥

एइ-त—इस प्रकार; **ब्रह्माण्ड**—सारा ब्रह्माण्ड; **भरि'**—भरकर; **अनन्त**—अनन्त; **जीव-गण**—जीव; **चौराशी-लक्ष**—चौरासी लाख; **ग्रोनिते**—योनियों में; **करये**—करते हैं; **भ्रमण**—भ्रमण।

अनुवाद

"इस ब्रह्माण्ड में ८४,००,००० योनियों में असंख्य जीव हैं और वे सारे के सारे इस ब्रह्माण्ड के भीतर भ्रमण करते रहते हैं।

तात्पर्य

यह उन तथाकथित विज्ञानियों तथा दार्शनिकों के लिए चुनौती है, जो यह मानकर चलते हैं कि केवल इसी लोक में जीव हैं। तथाकथित विज्ञानी चन्द्रलोक जा रहे हैं और वे यह कहते हैं कि वहाँ जीवन नहीं हैं। यह विचार श्री चैतन्य महाप्रभु के विचारों से मेल नहीं खाता। महाप्रभु कहते हैं कि ब्रह्माण्ड के भीतर सर्वत्र असंख्य जीव हैं, जो चौरासी लाख विभिन्न योनियों में भ्रमण करते रहते हैं। *भगवद्गीता* (२.२४) में हम पाते हैं कि जीव *सर्वगत* हैं—अर्थात् वे कहीं भी जा सकते हैं। इससे सूचित होता है कि जीव सर्वत्र हैं। वे स्थल में, जल में, वायु में, अग्नि में और आकाश में विद्यमान हैं। इस तरह समस्त प्रकार के भौतिक तत्त्वों में जीव रहते हैं। चूँकि समूचा भौतिक ब्रह्माण्ड पाँच तत्त्वों—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—से बना है, तो फिर ऐसा कैसे हो सकता है कि एक लोक में जीव हों और दूसरे में न हों? वैदिक विद्वान ऐसी मूखर्तापूर्ण बात को कभी भी स्वीकार नहीं कर सकते। वैदिक ग्रन्थों से हमें ज्ञात होता है कि प्रत्येक ग्रह में, चाहे वह पृथ्वी, जल, अग्नि या आकाश से बना हो, जीव होते हैं। हो सकता है कि ये जीव उन्हीं रूपों में न हों, जिनमें वे इस ग्रह में पाये जाते हैं, किन्तु वे विभिन्न तत्त्वों से बने हुए भिन्न रूपों में पाये जाते हैं। यहाँ तक कि इसी पृथ्वी पर हमें स्थलचारी पशुओं तथा जलचरों में अन्तर मिलता है। परिस्थिति के अनुसार जीवन-दशाएँ बदलती रहती हैं, किन्तु फिर भी जीव तो सर्वत्र विद्यमान होते हैं। तो फिर हमें इस या उस ग्रह में जीव के अस्तित्व का निषेध क्यों करना चाहिए? जो लोग दावा करते हैं कि वे चन्द्रलोक गये हैं या तो वे वहाँ गये ही नहीं या अपनी अपूर्ण दृष्टि के कारण वहाँ के विशेष प्रकार के जीवों को देख ही नहीं पाये।

जीवों को *अनन्त* कहा गया है, फिर भी वे ८४,००,००० योनियों से सम्बन्धित बतलाये गये हैं। *विष्णु पुराण* में कहा गया है :

जलजा-नव-लक्षाणि स्थावरा लक्ष विंशति।
क्रमयो रुद्र सङ्ख्यकाः पक्षिणां दश लक्षणम्।
त्रिंशल्लक्षाणि पशवः चतुर्लक्षाणि मानुषाः॥

"जल में रहने वाली योनियाँ ९,००,००० हैं। स्थावरों (वृक्षों तथा पौधों) की

संख्या २०,००,००० है। कीड़ों तथा सरीसृपों की योनियाँ ११,००,००० हैं और पक्षियों की १०,००,०००। चौपायों की योनियाँ ३०,००,००० तथा मनुष्यों की ४,००,००० हैं।" इनमें से कुछ योनियाँ एक ग्रह में हो सकती हैं तो दूसरे में नहीं, किन्तु हर हालत में ब्रह्माण्ड के सारे ग्रहों में—यहाँ तक कि सूर्य पर भी जीव विद्यमान होते हैं। यह वैदिक ग्रन्थों का निर्णय है। *भगवद्गीता* (२.२०) से इसकी पुष्टि होती है :

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

"आत्मा का न तो कभी जन्म होता है न मरण। वह न तो कभी जन्मा है, न जन्म लेता है और न ही जन्म लेगा। वह अजन्मा, नित्य, शाश्वत तथा पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर आत्मा मारा नहीं जाता।"

चूँकि जीवों का कभी संहार नहीं होता, अतः वे एक रूप से दूसरे में देहान्तरण करते रहते हैं। इस तरह विकसित चेतना के अनुसार उनके रूपों का विकास होता रहता है। यह देखा जा सकता है कि विभिन्न रूपों में चेतना की भिन्न-भिन्न मात्राओं का अनुभव होता है। कुत्ते की चेतना मनुष्य की चेतना से भिन्न होती है। यहाँ तक कि एक ही योनि में हम देख सकते हैं कि पिता की चेतना अपने पुत्र से और बच्चे की चेतना युवक से भिन्न होती है। जिस तरह हमें भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं, उसी तरह चेतना की दशाएँ भी भिन्न होती हैं। जहाँ हमें चेतना की विभिन्न दशाएँ दिखाई पड़ें, तो समझ लेना चाहिए कि शरीर भिन्न-भिन्न हैं। दूसरे शब्दों में, विभिन्न शरीर चेतना की विभिन्न दशाओं पर आश्रित होते हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (८.६) में भी हुई है :

यं यं वापि स्मरन् भावम् त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तं एवैति कौन्तेय सदा तद् भावभावितः॥

"मृत्यु के समय जीव की जैसी चेतना होती है, उसी के अनुसार उसे अगला शरीर मिलता है।" आत्मा के देहान्तरण की यही विधि है। शरीर के नाना प्रकार पहले से हैं; हम अपनी चेतना के अनुसार एक शरीर से दूसरे में जाते हैं।

केशाग्र-शतेक-भाग पुनः शतांश करि ।
तार सम सूक्ष्म जीवेर 'स्वरूप' विचारि ॥ १३९॥

केशाग्र-शतेक-भाग पुनः शतांश करि ।
तार सम सूक्ष्म जीवेर 'स्वरूप' विचारि ॥ १३९ ॥

केश-अग्र—बाल की नोक से; **शत-एक**—एक सौ; **भाग**—भाग; **पुनः**—दोबारा; **शत-अंश**—एक सौ भाग; **करि**—करके; **तार सम**—उसके बराबर; **सूक्ष्म**—बहुत सूक्ष्म; **जीवेर**—जीव का; **स्वरूप**—वास्तविक स्वरूप; **विचारि**—मैं मानता हूँ।

अनुवाद

"जीव की लम्बाई तथा चौड़ाई बाल के अगले भाग के एक दस-हजारवें भाग के बराबर बतलाई जाती है। यह जीव की मूल सूक्ष्म प्रकृति है।

केशाग्र-शत-भागस्य शतांश-सदृशात्मकः ।
जिवः सूक्ष्म-स्वरूपोऽयं सङ्ख्यातीतो हि चित्कणः ॥ १४०॥

केशाग्र-शत-भागस्य शतांश-सदृशात्मकः ।
जीवः सूक्ष्म-स्वरूपोऽयं सङ्ख्यातीतो हि चित्कणः ॥ १४० ॥

केश-अग्र—बाल की नोक का; **शत-भागस्य**—एक सौंवा भाग; **शत-अंश**—उसका भी सौंवा भाग; **सदृश**—के बराबर; **आत्मकः**—जिसकी प्रकृति; **जीवः**—जीव; **सूक्ष्म**—सूक्ष्म; **स्वरूपः**—स्वरूप; **अयम्**—यह; **सङ्ख्य-अतीतः**—गिनने में असम्भव; **हि**—निस्सन्देह; **चित्-कणः**—चित् कण।

अनुवाद

"'यदि हम बाल के अगले भाग के सौ खण्ड करें और इनमें से एक खण्ड लेकर फिर से उसके सौ भाग करें, तो वह सूक्ष्म भाग असंख्य जीवों में से एक के आकार के तुल्य होगा। वे सब चित्कण अर्थात् आत्मा के कण होते हैं, पदार्थ के नहीं।'

तात्पर्य

यह *श्रीमद्भागवत* के उस भाग की टीका से उद्धृत है जहाँ मूर्तिमान वेद पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की स्तुति करते हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१५.७) से भगवान् कृष्ण द्वारा होती है। *ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः*—"इस बद्ध जगत् में जीव मेरे सनातन अंश हैं।"

भगवान् कृष्ण स्वयं अपने आपको सूक्ष्म जीव से अभिन्न बताते हैं। भगवान् कृष्ण सर्वोपरि आत्मा अर्थात् परमात्मा हैं और सारे जीव उनके सूक्ष्म अंश हैं। निस्सन्देह, हम बाल के अग्रभाग को इतने सूक्ष्म कणों में विभाजित नहीं कर सकते, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से इतने सूक्ष्म कणों का अस्तित्व हो सकता है। आध्यात्मिक शक्ति इतनी प्रबल होती है कि आत्मा का एक परमाणु मात्र भी भौतिक जगत् का सबसे बड़ा मस्तिष्क बन सकता है। वही आध्यात्मिक स्फुलिंग एक चींटी के भीतर होता है और वही ब्रह्मा के शरीर के भीतर भी रहता है। यह आध्यात्मिक स्फुलिंग अपने *कर्म* अर्थात् भौतिक कार्यकलाप के अनुसार विशेष प्रकार का शरीर प्राप्त करता है। सारे भौतिक कार्य सतो, रजो तथा तमो गुणों से या उनके मिश्रण से सम्पन्न होते हैं। भौतिक प्रकृति के गुणों के मिश्रण के अनुसार ही जीव को विशेष प्रकार का शरीर प्रदान किया जाता है। यही निष्कर्ष है।

वालाग्र-शत-भागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेय इति चाह परा श्रुतिः ॥ १४१॥

बालाग्र-शत-भागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेय इति चाह परा श्रुतिः ॥ १४१॥

बाल-अग्र—बाल की नोक; **शत-भागस्य**—एक सौवें भाग का; **शतधा**—एक सौ भागों में; **कल्पितस्य**—बाँटकर; **च**—और; **भागः**—एक सूक्ष्म भाग; **जीवः**—जीव; **सः**—वह; **विज्ञेयः**—समझना चाहिए; **इति**—इस प्रकार; **च**—और; **आह**—कहा है; **परा**—प्रधान; **श्रुतिः**—वैदिक मंत्रों ने।

अनुवाद

'"यदि हम बाल की नोक को सौ भागों में विभाजित करें और इनमें से एक भाग को लेकर पुनः उसके सौ भाग करें, तो वह दस हजारवाँ भाग ही जीव की माप है। यह मुख्य वैदिक मन्त्रों का निर्णय है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *पंचदशी चित्रदीप* (८१) से है और उसके प्रथम तीन पद *श्वेताश्वतर उपनिषद्* (५.९) से लिये गये हैं।

सूक्ष्माणामप्यहं जीवः ॥ १४२ ॥

सूक्ष्माणामप्यहं जीवः ॥ १४२ ॥

सूक्ष्माणाम्—सूक्ष्म भागों का; **अपि**—निस्सन्देह; **अहम्**—मैं; **जीवः**—जीव।

अनुवाद

"(भगवान् कृष्ण कहते हैं :) "इन सूक्ष्मकणों में मैं जीव हूँ।'

तात्पर्य

जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अभिन्न तथा भिन्न है। आत्मा के रूप में जीव भगवान् से गुण में अभिन्न है, किन्तु भगवान् महानतम से महान् हैं और जीव सूक्ष्म में सब से अधिक सूक्ष्म है। यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* के श्लोक (११.१६.११) का तृतीय पद है।

अपरिमिता ध्रुवास्तनु-भृतो यदि सर्व-गतास्
तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा ।
अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवेत्
सममनुजानतां यदमतं मत-दुष्टतया ॥ १४३ ॥

अपरिमिता ध्रुवास्तनु-भृतो यदि सर्व-गतास्
तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा ।
अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवेत्
सममनुजानतां यदमतं मत-दुष्टतया ॥ १४३ ॥

अपरिमिताः—संख्या में असीम; **ध्रुवाः**—शाश्वत; **तनु-भृतः**—जिन्होंने भौतिक शरीरों को स्वीकार किया है; **यदि**—यदि; **सर्व-गताः**—सर्वव्यापक; **तर्हि**—तब; **न**—नहीं; **शास्यता**—नियन्त्रित; **इति**—इस प्रकार; **नियमः**—नियम; **ध्रुव**—हे परम सत्य; **न**—नहीं; **इतरथा**—किसी और प्रकार से; **अजनि**—उत्पन्न हुए हैं; **च**—और; **यत्-मयम्**—जिससे निर्मित; **तत्**—वह; **अविमुच्य**—त्यागे बिना; **नियन्तृ**—नियन्ता; **भवेत्**—हो जाए; **समम्**—सभी दृष्टियों से समान; **अनुजानताम्**—जो इस दार्शनिक गणना का अनुसरण करते हैं; **यत्**—वह; **अमतम्**—अनिर्णायक; **मत-दुष्टतया**—गलत विचार से।

अनुवाद

"'हे प्रभु, यद्यपि भौतिक देह धारण करने वाले सारे जीव आध्यात्मिक हैं तथा संख्या में अनन्त हैं, किन्तु यदि वे सर्वव्यापक होते

तो उनका आपके अधीन होने का प्रश्न ही न उठता। किन्तु, यदि उन्हें सनातन रूप से अस्तित्व में रहने वाले आध्यात्मिक पुरुष के कणों के रूप में अर्थात् आप सर्वोपरि आत्मा के अंश रूप में स्वीकार किया जाए, तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे सदैव आपके नियन्त्रण के अधीन हैं। यदि सारे जीव इतने से ही सन्तुष्ट हो जाएँ कि आध्यात्मिक कणों के रूप में वे आपके समान हैं, तो वे अनेक वस्तुओं के नियन्ता के रूप में सुखी हो जायें। यह निर्णय दोषपूर्ण है कि जीव तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् एक हैं। यह तथ्य नहीं है।'

तात्पर्य

यह श्लोक भी *श्रीमद्भागवत* (१०.८७.३०) से लिया गया है, जिसे मूर्तिमान वेदों ने कहा था।

তার মধ্যে 'স্থাবর', 'জঙ্গম'—দুই ভেদ ।
জঙ্গমে তির্যক্‌জল-স্থলচর-বিভেদ ॥ ১৪৪॥

तार मध्ये 'स्थावर', 'जङ्गम'—दुइ भेद ।
जङ्गमे तिर्य्यक्‌जल-स्थलचर-विभेद ॥ १४४॥

तार मध्ये—भौतिक संसार में बद्ध जीवों के बीच; **स्थावर**—अचर; **जङ्गम**—चर; **दुइ भेद**—दो भेद; **जङ्गमे**—चलने-फिरने में सक्षम जीवों में; **तिर्य्यक्**—हवा में घूम सकने वाले जीव (पक्षी); **जल**—या जल में चल सकने वाले जीवों में; **स्थल-चर**—पृथ्वी पर घूम सकने वाले जीव; **विभेद**—तीन श्रेणियाँ।

अनुवाद

"असंख्य जीवों के दो विभाग किये जा सकते हैं—चर तथा अचर। चर जीवों में पक्षी, जलचर तथा पशु आते हैं।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु स्पष्ट शिक्षा दे रहे हैं कि जीव विभिन्न अवस्थाओं में किस तरह रहते हैं। वृक्ष, पौधे तथा पत्थर चल नहीं सकते, फिर भी उन्हें जीव या आध्यात्मिक स्फुलिंग समझना होगा। वृक्षों, पौधों तथा पत्थरों जैसे शरीरों में भी आत्मा विद्यमान होता है। ये सभी जीव हैं। चलने-फिरने वाले

जीवों में—यथा पक्षियों, जलचरों तथा पशुओं में भी वही आध्यात्मिक स्फुलिंग होता है। जैसाकि यहाँ पर बताया गया है, ऐसे जीव होते हैं, जो उड़, तैर तथा चल सकते हैं। हमें यह भी निष्कर्ष निकालना चाहिए कि ऐसे भी जीव होते हैं, जो अग्नि तथा आकाश के भीतर चल सकते हैं। जीवों के विभिन्न भौतिक शरीर होते हैं, जो पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश से बने होते हैं। *तार मध्ये* शब्दों का अर्थ है, "इस ब्रह्माण्ड के भीतर।" सारा भौतिक ब्रह्माण्ड इन्हीं पाँच भौतिक तत्त्वों से बना है। यह सच नहीं है कि जीव एकमात्र इसी ग्रह पर रहते हैं, अन्य ग्रहों पर नहीं। ऐसा निष्कर्ष वेदों के सर्वथा विरुद्ध है। *भगवद्गीता* (२.२४) में कहा गया है :

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥

"यह आत्मा अटूट तथा अविनश्वर है और इसे न तो जलाया जा सकता है, न सुखाया जा सकता है। यह नित्य, सर्वव्यापी, अपरिवर्तनशील, अचल तथा सनातन है।"

आत्मा को भौतिक तत्त्वों से कोई प्रयोजन नहीं होता। कोई भी भौतिक तत्त्व खण्ड-खण्ड किया जा सकता है, विशेषतया पृथ्वी। किन्तु जीव को न तो खण्ड-खण्ड किया जा सकता है, न जलाया जा सकता है। इसलिए यह अग्नि के भीतर रह सकता है। हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि सूर्य के अन्दर भी जीव विद्यमान होते हैं। जीवों को इस ग्रह में या किसी और ग्रह में होने से क्यों नकारना चाहिए? वेदों के अनुसार जीव कहीं भी और हर जगह रह सकते हैं—स्थल पर, जल में, हवा में और अग्नि में। चाहे जैसी परिस्थिति रहे, जीव तो अपरिवर्तनीय (*स्थाणु*) होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा *भगवद्गीता* के कथनों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जीव ब्रह्माण्ड में सर्वत्र रहते हैं। वे वृक्ष, पौधे, जलचर, पक्षी, मनुष्य इत्यादि के रूप में बँटे हुए हैं।

তার মধ্যে মনুষ্য-জাতি অতি অল্পতর ।
তার মধ্যে ম্লেচ্ছ, পুলিন্দ, বৌদ্ধ, শবর ॥ ১৪৫ ॥

तार मध्ये मनुष्य-जाति अति अल्पतर ।
तार मध्ये म्लेच्छ, पुलिन्द, बौद्ध, शबर ॥ १४५ ॥

तार मध्ये—इन सभी जीवों में से; **मनुष्य-जाति**—मनुष्य जातियाँ; **अति**—अत्यन्त; **अल्पतर**—संख्या में कम; **तार मध्ये**—मनुष्यों की अल्पसंख्या में से; **म्लेच्छ**—वैदिक सिद्धान्तों का पालन करने में अक्षम असभ्य लोग; **पुलिन्द**—अनियन्त्रित, पुलिन्द; **बौद्ध**—बौद्ध धर्म को मानने वाले; **शबर**—मनुष्यों में निम्नतम (शिकारी वर्ग)।

अनुवाद

"यद्यपि जीवों में से मनुष्यों की संख्या अत्यल्प है, किन्तु इस विभाग को और आगे विभाजित किया जा सकता है, क्योंकि म्लेच्छ, पुलिन्द, बौद्ध तथा शबर जैसे अनेक असभ्य मानव हैं।

বেদ-নিষ্ঠ-মধ্যে অর্ধেক বেদ 'মুখে' মানে ।
বেদ-নিষিদ্ধ পাপ করে, ধর্ম নাহি গণে ॥ ১৪৬ ॥

वेद-निष्ठ-मध्ये अर्धेक वेद 'मुखे' माने ।
वेद-निषिद्ध पाप करे, धर्म नाहि गणे ॥ १४६ ॥

वेद-निष्ठ-मध्ये—वेदों के अनुयायिओं के मध्य; **अर्धेक**—लगभग आधे; **वेद**—वैदिक शास्त्र; **मुखे**—मुख में; **माने**—स्वीकार करते हैं; **वेद-निषिद्ध**—वेदों में निषिद्ध; **पाप**—पाप; **करे**—करते हैं; **धर्म**—धार्मिक सिद्धान्त; **नाहि**—नहीं; **गणे**—गिनते।

अनुवाद

"मनुष्यों में जो लोग वैदिक नियमों का पालन करने वाले हैं, उन्हें सभ्य माना जाता है। इनमें से आधे लोग दिखावा करते हैं और इन सिद्धान्तों के विरुद्ध सभी तरह के पापकर्म करते हैं। ऐसे लोग विधि-विधानों की परवाह नहीं करते।

तात्पर्य

वेद शब्द का अर्थ है "ज्ञान।" पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनके साथ अपने सम्बन्ध को समझकर उस सम्बन्ध के अनुसार कार्य करना, वही परम ज्ञान है। वैदिक नियमों के अनुसार कर्म करना धर्म कहलाता है। धर्म का अर्थ है पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदेशों का पालन करना। वैदिक नियम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा दिये हुए आदेश हैं। आर्य सभ्य मानव हैं, क्योंकि वे

वैदिक नियमों का अनादिकाल से पालन करते आ रहे हैं। जिससे मनुष्य परम पुरुष को समझ सकता है, ऐसे वैदिक नियमों के इतिहास का प्रारम्भ कब हुआ था, इसका पता लगाना कठिन है। जो साहित्य या ज्ञान परम पुरुष की खोज करता है, उसका प्रामाणिक धर्म के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु देश, शिष्यों तथा लोगों के समझने की क्षमता के अनुसार धर्म अनेक प्रकार के होते हैं।

श्रीमद्भागवत (१.२.६) में सर्वश्रेष्ठ धर्म का वर्णन इस प्रकार हुआ है—*स वै पुंसां परोधर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।* सबसे बड़ा धर्म वह है, जिससे मनुष्य ईश्वर के अस्तित्व, उनके रूप, नाम, गुण, लीला, धाम तथा सर्वव्यापी लक्षणों से अवगत हो सके। जब सारी वस्तुएँ ठीक से ज्ञात हो जाती हैं, तो उसे वैदिक ज्ञान की पूर्णता समझना चाहिए। वैदिक ज्ञान की पूर्णता भगवान् के गुणों का क्रमबद्ध ज्ञान है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१५.१५) में भगवान् कृष्ण द्वारा की गई है—*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः।* वैदिक ज्ञान का उद्देश्य ईश्वर को समझना है। अतः जो लोग वास्तव में वैदिक ज्ञान का पालन करते हैं और ईश्वर की खोज करते हैं, वे भगवान् के आदेश के विरुद्ध कोई पापकर्म नहीं कर सकते। यद्यपि इस कलियुग में लोग नाना प्रकार के धर्मों का पालन करने का दावा करते हैं, फिर भी अधिकांश लोग वेदों के आदेशों के विरुद्ध पाप कर्म करते हैं। इसीलिए यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं—*वेदनिषिद्ध पाप करे, धर्म नाहि गणे।* इस युग में अनेक लोग धर्म तो मानते हैं, किन्तु वास्तव में वे नियमों का पालन नहीं करते। उल्टे वे सभी तरह के पाप करते हैं।

धर्माचारि-मध्ये बहुत 'कर्म-निष्ठ' ।
कोटि-कर्म-निष्ठ-मध्ये एक 'ज्ञानी' श्रेष्ठ ॥ १४७ ॥
धर्माचारि-मध्ये बहुत 'कर्म-निष्ठ' ।
कोटि-कर्म-निष्ठ-मध्ये एक 'ज्ञानी' श्रेष्ठ ॥ १४७ ॥

धर्म-आचारि-मध्ये—वेदों के सिद्धान्त अथवा वेद प्रणाली को वास्तव में मानने वालों में से; **बहुत**—उनमें से बहुत से; **कर्म-निष्ठ**—सकाम कर्मों से आकृष्ट; **कोटि-कर्म-निष्ठ-मध्ये**—वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार सकाम कर्म करने वाले ऐसे करोड़ों लोगों में से; **एक**—एक; **ज्ञानी**—ज्ञानी, बुद्धिमान; **श्रेष्ठ**—श्रेष्ठ।

अनुवाद

"वैदिक ज्ञान के अनुयायियों में से अधिकांश सकाम कर्म की विधि का अनुसरण करते हैं और अच्छे तथा बुरे काम में अन्तर करते हैं। ऐसे अनेक निष्ठावान सकाम कर्मियों में ऐसा कोई एक हो सकता है, जो वास्तव में ज्ञानी हो।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुसार *कर्मनिष्ठ* शब्द ऐसे व्यक्ति का द्योतक है, जो अपने सत्कर्म तथा पुण्य कर्म के फल का भोग करने की इच्छा रखता है। वैदिक नियमों का पालन करने वालों में से कुछ परम सत्य को सर्वस्व अर्पित कर देते हैं और अपने पुण्यकर्मों के फलों को भोगने की आकांक्षा नहीं रखते। इनकी भी गणना कर्मनिष्ठों में की जाती है। कभी-कभी हम देखते हैं कि धार्मिक लोग बहुत कष्ट सहकर धन कमाते हैं और फिर उस धन को किसी पुण्य कार्य के लिए—धार्मिक संस्थाएँ, स्कूल तथा अस्पताल खोलने के लिए—दान में दे डालते हैं। कोई चाहे अपने लिए धन कमाये या जनता के लाभ के लिए, वह कर्मनिष्ठ ही कहा जाता है। लाखों कर्मनिष्ठों में से कोई एक ज्ञानी होता है। जो लोग सकाम कर्म से बचना चाहते हैं और परम सत्य से एकाकार होने के लिए मौन की साधना करते हैं, वे सामान्यतया *ज्ञानी* कहलाते हैं। उनकी रुचि सकाम कर्म में नहीं, अपितु ब्रह्म में समाहित होने में रहती है। ये दोनों तरह के लोग, कर्मनिष्ठ एवं ज्ञानी, इस जगत् के भीतर निजी लाभ में रुचि रखते हैं। कर्मियों की रुचि इस भौतिक जगत् में प्रत्यक्ष निजी-लाभ में होती है और ज्ञानियों की रुचि परम ब्रह्म से तादात्म्य प्राप्त करने में होती है। ज्ञानियों का विश्वास है कि सकाम कर्म अपूर्ण है। उनके लिए पूर्णता कर्म न करने तथा ब्रह्म में लीन होने में है। यही उनके जीवन का लक्ष्य होता है। ज्ञानी लोग ज्ञान, ज्ञाता तथा ज्ञेय के अन्तर को समाप्त कर देना चाहते हैं। यह दर्शन अद्वैतवाद कहलाता है और इसका लक्षण है आध्यात्मिक मौन।

কোটি-জ্ঞানি-মধ্যে হয় এক-জন 'মুক্ত' ।
কোটি-মুক্ত-মধ্যে 'দুর্লভ' এক কৃষ্ণ-ভক্ত ॥ ১৪৮ ॥

कोटि-ज्ञानि-मध्ये हय एक-जन 'मुक्त' ।
कोटि-मुक्त-मध्ये 'दुर्लभ' एक कृष्ण-भक्त ॥ १४८ ॥

कोटि-ज्ञानि-मध्ये—ऐसे करोड़ों बुद्धिमानों में से; **हय**—होता है; **एक-जन**—एक व्यक्ति; **मुक्त**—वस्तुतः मुक्त; **कोटि-मुक्त-मध्ये**—ऐसे करोड़ों मुक्त लोगों में से; **दुर्लभ**—दुर्लभ; **एक**—एक; **कृष्ण-भक्त**—भगवान् कृष्ण का शुद्ध भक्त।

अनुवाद

"ऐसे लाखों ज्ञानियों में से कोई एक वास्तव में मुक्त होता है और ऐसे लाखों मुक्त लोगों में से कृष्ण का शुद्ध भक्त ढूंढ पाना अत्यन्त दुर्लभ है।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (१०.२.३२) में कहा गया है कि ज्ञानी लोग अपने अल्प ज्ञान के कारण वास्तव में मुक्त नहीं होते। वे केवल सोचते हैं कि वे मुक्त हैं। ज्ञान की पूर्णता तब प्राप्त होती है, जब कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को जान लेता है। *ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते।* परम सत्य (*सत्य वस्तु*) का वर्णन ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् के नाम से किया जाता है। निराकार ब्रह्म तथा परमात्मा विषयक ज्ञान तब तक अपूर्ण माना जाता है, जब तक मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के ज्ञान के स्तर पर नहीं आता। इसीलिए इस श्लोक में स्पष्ट कहा गया है— *कोटि-मुक्त-मध्ये 'दुर्लभ' एक कृष्ण-भक्त।* जो लोग निराकार ब्रह्म या अन्तर्यामी परमात्मा के ज्ञान की खोज करते हैं, वे निश्चित रूप से मुक्त माने जाते हैं; किन्तु अपने अपूर्ण ज्ञान के कारण *श्रीमद्भागवत* में उन्हें *विमुक्त मानिनः* कहा गया है। चूँकि उनका ज्ञान अधूरा होता है, इसलिए उनकी मुक्ति-धारणा अपूर्ण होती है। पूर्ण ज्ञान तभी सम्भव है, जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को जान लिया जाता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (५.२९) में भगवान् कृष्ण द्वारा होती हैं :

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

"पूर्णतया मेरी चेतना में स्थित व्यक्ति मुझे ही समस्त यज्ञों तथा तपों का चरम भोक्ता, समस्त लोकों तथा देवताओं का परमेश्वर तथा समस्त जीवों का शुभचिन्तक जानकर भौतिक कष्टों से शान्ति प्राप्त करता है।"

कर्मियों, ज्ञानियों तथा योगियों में खोज चल रही है, किन्तु अब जब तक यह खोज पूरी नहीं हो जाती, तब तक किसी को शान्ति नहीं मिल सकती। इसीलिए *भगवद्गीता* का कहना है—*ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति*—मनुष्य को वास्तविक शान्ति केवल तभी प्राप्त होती है, जब वह कृष्ण को जान लेता है। इसका वर्णन अगले श्लोक में हुआ है।

कृष्ण-भक्त—निष्काम, अतएव 'शान्त' ।
भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-कामी—सकलि 'अशान्त' ॥ १४९॥

कृष्ण-भक्त—निष्काम, अतएव 'शान्त' ।
भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-कामी—सकलि 'अशान्त' ॥ १४९॥

कृष्ण-भक्त—भगवान् कृष्ण का भक्त; **निष्काम**—वास्तव में इच्छा रहित; **अतएव**—इसलिए; **शान्त**—शान्त; **भुक्ति**—भौतिक सुख की; **मुक्ति**—भौतिक गतिविधियों से मुक्ति की; **सिद्धि**—योगाभ्यास में सिद्धि की; **कामी**—कामना रखने वाले; **सकलि**—वे सब; **अशान्त**—अशान्त होते हैं।

अनुवाद

"चूँकि भगवान् कृष्ण का भक्त निष्काम होता है, इसलिए वह शान्त होता है। सकाम कर्मी भौतिक भोग चाहते हैं, ज्ञानी मुक्ति चाहते हैं और योगी भौतिक ऐश्वर्य चाहते हैं; अतः वे सभी कामी हैं और शान्त नहीं हो सकते।

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण के भक्त को कृष्ण की सेवा के अतिरिक्त अन्य कोई इच्छा नहीं रहती। यहाँ तक कि तथाकथित मुक्त लोग भी इच्छाओं से भरे होते हैं। सकाम कर्मी रहने की अच्छी सुविधाएँ चाहते हैं और ज्ञानी ब्रह्म से एकाकार होना चाहते हैं। योगी भौतिक ऐश्वर्य, योग-सिद्धियाँ तथा जादू चाहते हैं। ये सभी अभक्त *कामी* हैं। इन्हें किसी-न-किसी वस्तु की इच्छा रहती है, अतः ये शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते।

कृष्ण ने *भगवद्गीता* (५.२९) में शान्ति का उपाय बतलाया है :

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

जो यह जानता है कि सारे ब्रह्माण्ड में कृष्ण ही सभी प्रकार के यज्ञ, व्रत तथा तप के सर्वोपरि भोक्ता हैं (जो कि सब केवल उनकी भक्ति प्राप्त करने के लिए ही सम्पन्न किये जाने चाहिए); जो यह जानता है कि कृष्ण ही परम पुरुष हैं और इस प्रकार सारे भौतिक लोकों के मालिक हैं, और कृष्ण ही जीव के एकमात्र मित्र हैं, जो वास्तव में सारे जीवों का कल्याण कर सकते हैं (*सुहृदं सर्वभूतानाम्*)—जो कृष्ण के बारे में इन तीन सिद्धान्तों को जानता है, वह तुरन्त निष्काम बन जाता है और इस प्रकार शान्त हो जाता है। कृष्ण-भक्त जानता है कि कृष्ण सभी प्रकार से उसके मित्र तथा रक्षक हैं, जो अपने भक्त के लिए कुछ भी कर सकने में समर्थ हैं। कृष्ण कहते हैं—*कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति*—"हे कुन्तीपुत्र, तुम निडर होकर घोषित कर दो कि मेरा भक्त कभी विनाश को प्राप्त नहीं होता।" चूँकि यह आश्वासन कृष्ण दे रहे हैं, अतः भक्त कृष्ण में वास करता है और उसे अपने निजी लाभ की कोई इच्छा नहीं रहती। भक्त के लिए कल्याणकारी भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं आधार हैं। भला भक्त अपने लिए किसी अच्छी वस्तु की कामना क्यों करने लगा? उसका एकमात्र कार्य होता है यथासम्भव भगवान् की सेवा करना और उन्हें प्रसन्न करना। कृष्ण-भक्त को अपने खुद के लाभ की कोई इच्छा नहीं रहती। वह भगवान् द्वारा पूरी तरह रक्षित होता है। *अवश्य रखिबे कृष्ण विश्वास पालन।* भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि वह निष्काम है, क्योंकि कृष्ण हर अवस्था में उसकी रक्षा करेंगे। ऐसा नहीं है कि वह कृष्ण से किसी प्रकार की सहायता की आशा करता है। वह तो कृष्ण पर उसी तरह आश्रित रहता है, जिस तरह एक शिशु अपने माता-पिता पर आश्रित रहता है। शिशु यह नहीं जानता कि वह अपने माता-पिता से किस तरह से सेवा प्राप्त करे, किन्तु तो भी उसकी सभी प्रकार से रक्षा की जाती है। इसे ही *निष्काम* कहते हैं।

यद्यपि सारे कर्मी, ज्ञानी तथा योगी विविध कार्यों द्वारा अपनी इच्छाएँ पूरी करते हैं, फिर भी वे कभी तुष्ट नहीं होते। एक कर्मी दस लाख डालर कमाने के लिए कठोर परिश्रम कर सकता है, किन्तु ज्योंही उसे दस लाख डालर मिल जाते हैं, वह दूसरे दस लाख डालर की इच्छा करने लगता है। कर्मियों की इच्छा का कोई अन्त नहीं होता। उसे जितना ही मिलता जाता है, उसकी

इच्छा उतनी ही बढ़ती जाती है। ज्ञानी कभी निष्काम नहीं हो सकते, क्योंकि उनकी बुद्धि अपूर्ण होती है। वे ब्रह्म-ज्योति में समा जाना चाहते हैं और उन्हें वह पद मिल भी जाए तो भी वे सन्तुष्ट नहीं होते। ऐसे अनेक ज्ञानी या संन्यासी हैं, जो इस संसार को मिथ्या कहकर त्याग देते हैं; किन्तु संन्यास लेने के बाद वे पुनः राजनीति या लोक-कल्याण में अपने आपको व्यस्त रखने के लिए संसार में लौट आते हैं—स्कूल तथा अस्पताल खोलते हैं। इसका अर्थ यही है कि वे असली ब्रह्म (*ब्रह्म सत्यम्*) को प्राप्त नहीं कर सके थे। उन्हें लोककल्याण के कार्यों में लगने के लिए नीचे भौतिक स्तर पर उतरना पड़ता है। इस तरह वे पुनः इच्छाओं को पालते हैं और जब ये इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं, तो वे कुछ और चाहने लगते हैं। अतः ज्ञानी निष्काम नहीं हो सकते, न ही योगी, क्योंकि वे योगसिद्धि इसलिए चाहते हैं कि वे कुछ जादूगरी दिखाकर लोकप्रिय बन सकें। लोग ऐसे योगियों के चारों ओर मँडराने लगते हैं और योगी अधिकाधिक चाटुकारिता पसन्द करने लगते हैं। वे अपनी योग-शक्ति का दुरुपयोग करते हैं, अतः वे भौतिक स्तर पर पुनः आ गिरते हैं। निष्काम बन पाना उनके वश की बात नहीं रह जाती।

निष्कर्ष यही निकलता है कि भगवान् की सेवा-मात्र से सन्तुष्ट रहने वाले भक्त ही वास्तव में निष्काम हो सकते हैं। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु यहाँ कहते हैं—*कृष्ण-भक्त निष्काम।* चूँकि कृष्ण-भक्त कृष्ण से सन्तुष्ट रहता है, अतएव उसके नीचे गिरने की कोई सम्भावना नहीं रहती।

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायण-परायणः ।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महा-मुने ॥ १५० ॥

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायण-परायणः ।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महा-मुने ॥ १५० ॥

मुक्तानाम्—अज्ञान के बन्धन से मुक्त लोगों का; **अपि**—भी; **सिद्धानाम्**—सिद्धि प्राप्त व्यक्तियों में से; **नारायण**—भगवान् नारायण; **परायणः**—भक्त; **सु-दुर्लभः**—अत्यन्त दुर्लभ; **प्रशान्त-आत्मा**—पूर्णरूपेण शान्त, निष्काम; **कोटिषु**—करोड़ों में से; **अपि**—भी; **महा-मुने**—हे महामुनि।

अनुवाद

"'हे महामुनि, अज्ञान से मुक्त लाखों पुरुषों में तथा सिद्धि-प्राप्त लाखों सिद्धों में से कदाचित् कोई एक नारायण का शुद्ध भक्त होता है। केवल ऐसा भक्त ही वास्तव में पूर्णतया तुष्ट तथा शान्त होता है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (६.१४.५) से लिया गया है। *नारायण-परायण* अर्थात् भगवान् नारायण का भक्त ही एक मात्र प्रसन्नचित्त व्यक्ति है। नारायण-परायण पहले से भवबन्धन से मुक्त होता है। उसके पास पहले से सारी योग सिद्धियाँ रहती हैं। जब तक मनुष्य *भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि* स्तर को पार करके *नारायण-परायण* पद को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक वह पूर्णतया तुष्ट नहीं हो सकता। यही शुद्ध भक्ति की अवस्था है।

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

जो कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई इच्छा नहीं रखता और *ज्ञान-मार्ग* से प्रभावित नहीं होता, वह वास्तव में अज्ञान से मुक्त हो जाता है। उच्च कोटि का व्यक्ति वही होता है, जो कर्म या योग से प्रभावित नहीं होता। वह एक मात्र कृष्ण पर निर्भर रहता है और अपनी भक्ति से सन्तुष्ट रहता है। *श्रीमद्भागवत* (६.१७.२८) के अनुसार *नारायण-पराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति।* ऐसा व्यक्ति किसी बात से नहीं डरता। ऐसे व्यक्ति के लिए स्वर्ग और नरक एक समान होते हैं। नारायण-परायण की स्थिति को न जानने के कारण ये धूर्त ईर्ष्यालु हो जाते हैं। नारायण की कृपा से भक्त इस भौतिक संसार में सर्वोत्तम ऐश्वर्यपूर्ण स्थिति में होता है। धूर्त लोग नारायण तथा उनके भक्त से ईर्ष्या करते हैं, किन्तु भक्त नारायण के अन्य भक्त को प्रसन्न करने का प्रयास करता है, क्योंकि वह जानता है कि नारायण के प्रतिनिधि को प्रसन्न कर पाने पर वह सीधे भगवान् नारायण को प्रसन्न करता है। अतः भक्त अपने गुरु को सर्वोत्तम सुविधाएँ प्रदान करता है। बाहरी व्यक्ति जो नारायण के विषय में कोई जानकारी नहीं रखते, वे नारायण तथा उनके भक्त से ईर्ष्या करने लगते हैं। फलस्वरूप जब वे देखते हैं कि नारायण का भक्त ऐश्वर्ययुक्त स्थिति में है, तब वे और भी अधिक ईर्ष्यालु

हो जाते हैं। किन्तु जब नारायण का भक्त ऐसे मूर्खों से यह कहता है कि मेरे पास आओ और मेरे ही जैसी सुविधाजनक स्थिति में रहो, तो वे मना कर देते हैं, क्योंकि वे अवैध सम्बन्ध, माँसाहार, नशा तथा जुआ खेलना नहीं छोड़ सकते। अतः भौतिकतावादी व्यक्ति नारायण-परायण का संग नहीं अपनाता, यद्यपि वह भक्त की भौतिक स्थिति से ईर्ष्या करता रहता है। पाश्चात्य देशों में जब जन-साधारण—दुकानदार तथा श्रमिक—हमारे भक्तों को काम न करने पर भी, भरपेट भोजन का आनन्द लेते हुए जीवन बिताते देखते हैं, तो वे यह जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो उठते हैं कि ये लोग पैसा कहाँ से लाते हैं। ऐसे लोग ईर्ष्या-सहित यह पूछते हैं कि, "काम किए बिना इतनी सुविधाओं में रहना कैसे सम्भव है? आपके पास इतनी मोटरकारें कहाँ से आईं; आपके चेहरों पर चमक कैसे रहती है और आपके पास इतने बढ़िया कपड़े कहाँ से आये?" वे नहीं जानते कि कृष्ण अपने भक्तों की देखभाल करते हैं, इसलिए ऐसे लोग चकित हो जाते हैं और कुछ तो ईर्ष्या करने लगते हैं।

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान्जीव ।
गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज ॥ १५१॥

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव ।
गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज ॥ १५१॥

ब्रह्माण्ड भ्रमिते—ब्रह्माण्ड में भ्रमण करते हुए; **कोन**—कुछ; **भाग्यवान्**—भाग्यवान्; **जीव**—जीव; **गुरु**—गुरु की; **कृष्ण**—कृष्ण की; **प्रसादे**—कृपा से; **पाय**—पाता है; **भक्ति-लता**—भक्ति लता का; **बीज**—बीज।

अनुवाद

"सारे जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार समूचे ब्रह्माण्ड में घूम रहे हैं। इनमें से कुछ उच्च ग्रह-मण्डलों को जाते हैं और कुछ निम्न ग्रह-मण्डलों को। ऐसे करोड़ों भटक रहे जीवों में से कोई एक अत्यन्त भाग्यशाली होता है, जिसे कृष्ण की कृपा से अधिकृत गुरु का सान्निध्य प्राप्त करने का अवसर मिलता है। कृष्ण तथा गुरु दोनों की कृपा से ऐसा व्यक्ति भक्ति रूपी लता के बीज को प्राप्त करता है।

तात्पर्य

जब हम *ब्रह्माण्ड* कहते हैं, तो हमारा आशय समूचे ब्रह्माण्ड से या करोड़ों ब्रह्माण्डों के समूह से होता है। सारे ब्रह्माण्डों में असंख्य ग्रह होते हैं और इन ग्रहों में जल, स्थल तथा वायु में असंख्य जीव बसते हैं। करोड़ों तथा अरबों जीव सभी जगह हैं और ये सभी माया द्वारा जन्म-जन्मांतर अपने सकाम कर्मों के फलों को भोगते रहते हैं। यह तो भौतिक रूप से बद्ध जीवों की स्थिति है। यदि इन असंख्य जीवों में से कोई वास्तव में भाग्यवान् होता है, तो वह कृष्ण की कृपा से प्रामाणिक गुरु के सम्पर्क में आता है।

कृष्ण हर एक के हृदय में स्थित हैं और यदि मनुष्य कुछ चाहता है, तो कृष्ण उसकी इच्छा की पूर्ति करते हैं। यदि कोई जीव संयोगवश या भाग्यवश कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सम्पर्क में आता है और इस आन्दोलन से सम्बन्ध बनाना चाहता है, तो हर एक के हृदय में विराजमान कृष्ण उसे प्रामाणिक गुरु से मिलने का अवसर प्रदान करते हैं। यह *गुरु-कृष्ण-प्रसाद* कहलाता है। कृष्ण सारे जीवों पर अपनी कृपा प्रदान करना चाहते हैं और ज्योंही जीव भगवत्कृपा की कामना करता है, त्योंही भगवान् तुरन्त ही उसे प्रामाणिक गुरु से मिलने का अवसर प्रदान करते हैं। ऐसा भाग्यशाली व्यक्ति कृष्ण तथा गुरु दोनों का संरक्षण पाता है। उसे भीतर से कृष्ण सहायता देते हैं और बाहर से गुरु। दोनों ही निष्ठावान जीव को इस भवबन्धन से मुक्त होने में सहायता करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं।

कोई किस तरह इतना भाग्यवान बन सकता है, इसे हम श्रील नारद मुनि के जीवन में देख सकते हैं। वे अपने पूर्व जन्म में दासी के पुत्र थे। यद्यपि वे प्रतिष्ठित कुल में नहीं जन्मे थे, किन्तु सौभाग्यवश उनकी माता कुछ वैष्णवों की सेवा करती थीं। जब ये वैष्णव चातुर्मास्य में विश्राम कर रहे थे, तब बालक नारद को इनकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ये वैष्णव दयावश इस बालक को अपना शेष बचा भोजन दे दिया करते थे। उनकी सेवा करने तथा उनकी आज्ञा का पालन करने से बालक उन वैष्णवों का कृपापात्र बन गया और वैष्णवों की अज्ञात कृपा से वह धीरे-धीरे शुद्ध भक्त बन गया। अगले जन्म में

वह बालक नारद मुनि बना, जो वैष्णवों में सर्वोच्च तथा सबसे महत्त्वपूर्ण गुरु एवं वैष्णवों के आचार्य थे।

नारद मुनि के पद-चिह्नों पर चलकर यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन हर व्यक्ति को कृष्ण के सम्पर्क में आने का अवसर प्रदान करके मानवता की सेवा कर रहा है। जो कोई भाग्यशाली होता है, वह इस आन्दोलन से तुरन्त जुड़ जाता है। तब कृष्ण की कृपा से उसका जीवन सफल हो जाता है। हर व्यक्ति में सुप्त कृष्णभक्ति होती है—कृष्ण के लिए प्रेम होता है। और अच्छे भक्तों की संगति में वह प्रेम प्रकट हो जाता है। *चैतन्य-चरितामृत* (मध्य २२.१०७) में कहा गया है :

नित्य सिद्ध कृष्णप्रेम 'साध्य' कभु नय।
श्रवणादि-शुद्ध-चित्ते करये उदय॥

हर एक के भीतर कृष्ण के प्रति सुप्त भक्ति होती है। केवल भक्तों की संगति करने से, उनके सदुपदेश सुनने से तथा हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन मात्र से कृष्ण का सुप्त प्रेम जाग्रत हो उठता है। इस तरह मनुष्य को भक्ति का बीज प्राप्त होता है। *गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति लता बीज।*

মালী হঞা করে সেই বীজ আরোপণ ।
শ্রবণ-কীর্তন-জলে করয়ে সেচন ॥ ১৫২॥

माली हञा करे सेइ बीज आरोपण ।
श्रवण-कीर्तन-जले करये सेचन ॥ १५२॥

माली हञा—माली होकर; **करे**—करता है; **सेइ**—वह; **बीज**—भक्ति बीज का; **आरोपण**—बोना; **श्रवण**—श्रवण के; **कीर्तन**—कीर्तन के; **जले**—जल से; **करये**—करता है; **सेचन**—सिंचन।

अनुवाद

"जब किसी व्यक्ति को भक्ति का बीज प्राप्त हो जाता है, तब उसे माली बनकर उस बीज को अपने हृदय में बोकर उसका ध्यान रखना चाहिए। यदि वह बीज को क्रमशः श्रवण तथा कीर्तन की विधि से सींचता है, तो वह बीज अंकुरित होने लगेगा।

तात्पर्य

भक्तों के साथ या मन्दिर में रहने का अर्थ है श्रवण कीर्तन विधि से जुड़ना। कभी-कभी नये भक्त सोचते हैं कि वे अर्चाविग्रह की पूजा किये बिना श्रवण-कीर्तन विधि चालू रख सकते हैं, किन्तु श्रवण कीर्तन की ऐसी विधि हरिदास ठाकुर जैसे अत्यन्त विकसित भक्तों के लिए है, जो अर्चाविग्रह की पूजा किये बिना श्रवण-कीर्तन में लगे रहते थे। किन्तु हमें हरिदास ठाकुर का झूठा अनुकरण नहीं करना चाहिए और श्रवण-कीर्तन में लगे रहने के प्रयास में अर्चाविग्रह की पूजा को त्यागना नहीं चाहिए। कनिष्ठ भक्तों के लिए यह सम्भव नहीं है।

गुरु-प्रसाद शब्द इस बात का सूचक है कि गुरु शिष्य को भक्ति का वरदान देने में अत्यन्त दयालु होता है। गुरु के पास शिष्य को देने के लिए यही सबसे बड़ा उपहार होता है। जिन्होंने पहले पुण्य कर्म किये हुए हैं, वे जीवन के परम लाभ को प्राप्त करने के पात्र होते हैं। और इस लाभ को प्रदान करने के लिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपना प्रतिनिधि भेजते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा प्राप्त करके गुरु पवित्र तथा उन्नत लोगों को इस कृपा का वितरण करता है। इस प्रकार गुरु अपने शिष्य को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भक्तिमय सेवा करने का प्रशिक्षण देता है। यही *गुरु-कृपा* कहलाती है। यह *कृष्ण-प्रसाद* या कृष्ण की कृपा है कि वे योग्य शिष्य के लिए प्रामाणिक प्रामाणिक गुरु भेजते हैं। कृष्ण-कृपा से ही गुरु से भेंट होती है और गुरु की कृपा से शिष्य भगवान् की भक्तिमय सेवा में पूर्णत: प्रशिक्षित हो पाता है।

भक्ति-लता-बीज का अर्थ है "भक्ति का बीज।" हर वस्तु का मूल कारण या बीज होता है। किसी विचार, कार्यक्रम, योजना या युक्ति के लिए सर्वप्रथम योजना की संकल्पना चाहिए, जिसे *बीज* कहते हैं। जिन विधियों, विधि-विधानों से मनुष्य भक्ति में प्रशिक्षित होता है, वह *भक्ति-लता-बीज* है। वह भक्ति-लता बीज कृष्ण-कृपा से गुरु से प्राप्त होता है। दूसरे बीज, जिन्हें *अन्य अभिलाष बीज* कहते हैं, उनमें *कर्म-बीज* तथा *ज्ञान-बीज* सम्मिलित हैं। यदि किसी को गुरु से भक्ति-लता-बीज प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो पाता, तो वह कर्म-बीज, ज्ञान-बीज या राजनीतिक, सामाजिक अथवा लोक-

कल्याण-बीज का अनुशीलन करता है। किन्तु भक्ति-लता-बीज इन अन्य बीजों से भिन्न होता है। भक्ति-लता-बीज केवल गुरु की कृपा से प्राप्त हो सकता है। अतः भक्ति-लता-बीज प्राप्त करने के लिए गुरु को प्रसन्न करना आवश्यक है (*यस्य प्रसादाद् भगवत् प्रसादः*)। भक्ति-लता-बीज भक्ति का उद्गम है। गुरु को प्रसन्न किये बिना मनुष्य को कर्म, ज्ञान या योग का बीज हाथ लगता है, जिससे भक्ति का लाभ नहीं मिल सकता। किन्तु जो गुरु को समर्पित होता है, उसे भक्ति-लता-बीज प्राप्त होता है। यह भक्ति-लता-बीज गुरु से दीक्षा प्राप्त करने पर मिल पाता है। गुरु की कृपा प्राप्त हो जाने के बाद, उसे गुरु के उपदेशों को दुहराते रहना चाहिए। इसे *श्रवण-कीर्तन* कहते हैं। जिसने गुरु से ठीक से नहीं सुना अथवा जो विधानों का ठीक से पालन नहीं करता वह कीर्तन करने के योग्य नहीं होता। *भगवद्गीता* (२.४१) में इसकी व्याख्या की गई है—*व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।* जो गुरु के उपदेशों को ध्यानपूर्वक नहीं सुनता, वह कीर्तन करने या भक्ति-सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए उपयुक्त नहीं है। भक्ति-लता-बीज को गुरु से प्राप्त उपदेश के जल से सींचना पड़ता है।

उपजिया बाड़े लता 'ब्रह्माण्ड' भेदि' याय ।
'विरजा', 'ब्रह्म-लोक' भेदि' 'पर-व्योम' पाय ॥ १५३ ॥

उपजिया बाड़े लता 'ब्रह्माण्ड' भेदि' ग्राय ।
'विरजा', 'ब्रह्म-लोक' भेदि' 'पर-व्योम' पाय ॥ १५३ ॥

उपजिया—सींचे जाने पर; **बाड़े**—बढ़ती है; **लता**—भक्ति की लता; **ब्रह्माण्ड**—सारा ब्रह्माण्ड; **भेदि'**—भेदकर; **ग्राय**—जाती है; **विरजा**—आध्यात्मिक जगत् एवं भौतिक जगत् के बीच की नदी, विरजा नदी; **ब्रह्म-लोक**—ब्रह्मलोक, ब्रह्मज्योति; **भेदि'**—छेदकर; **पर-व्योम**—आध्यात्मिक आकाश; **पाय**—पहुँच जाती है।

अनुवाद

"भक्ति-लता-बीज को सींचने पर बीज अंकुरित होता है और लता धीरे-धीरे इस ब्राह्मण्ड की दीवारों को भेदकर वैकुण्ठ तथा भौतिक जगत् के बीच स्थित विरजा नदी के पार चली जाती है। यह ब्रह्मलोक या

ब्रह्मज्योति पहुँचती है। ब्रह्मलोक की परत को भी भेदकर भक्ति लता परव्योम तथा गोलोक वृन्दावन पहुँच जाती है।

तात्पर्य

सामान्यतया लता किसी बड़े वृक्ष का सहारा लेती है, किन्तु भक्ति-लता आध्यात्मिक शक्ति की लता होने के कारण किसी भौतिक लोक का आश्रय नहीं लेती, क्योंकि भौतिक लोक में ऐसा कोई वृक्ष नहीं होता, जिसका उपयोग भक्ति-लता आश्रय के लिए कर सके। दूसरे शब्दों में, भक्ति को किसी भौतिक उद्देश्य के लिए प्रयुक्त नहीं की जा सकती। भक्ति तो केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के लिए होती है। कभी-कभी अल्पज्ञ लोग यह मान बैठते हैं कि भक्ति का उपयोग भौतिक वस्तुओं के लिए भी किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, उनका कहना है कि अपने देश की या देवताओं की भक्ति की जा सकती है, किन्तु यह सत्य नहीं है। भक्ति तो विशेष रूप से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के निमित्त होती है और यह इस भौतिक परिधि से परे होती है। आध्यात्मिक तथा भौतिक जगतों के बीच में एक नदी या कारण सागर है, और यह नदी भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के प्रभाव से मुक्त होते हैं। इसलिए यह विरजा कहलाती है। *वि* उपसर्ग का अर्थ है *विगत* (अर्थात् "वह जिसका पूर्णतया उन्मूलन हो गया है") तथा *रजः* का अर्थ है "भौतिक जगत् का प्रभाव।" इस स्तर पर जीव भौतिक बन्धन से पूर्णरूपेण मुक्त रहता है। ज्ञानियों के लिए, जो ब्रह्मज्योति में समा जाना चाहते हैं, ब्रह्मलोक है। किन्तु भक्ति लता का न तो इस भौतिक जगत् में आश्रय है, न ही ब्रह्मलोक में कोई आश्रय होता है, भले ही ब्रह्मलोक भौतिक जगत् से परे है। यह भक्ति-लता बढ़ती हुई परव्योम तक पहुँच जाती है, जहाँ गोलोक वृन्दावन स्थित है।

তবে যায় তদুপরি 'গোলোক-বৃন্দাবন' ।
'কৃষ্ণ-চরণ'-কল্প-বৃক্ষে করে আরোহণ ॥ ১৫৪ ॥

तबे याय तदुपरि 'गोलोक-वृन्दावन' ।
'कृष्ण-चरण'-कल्प-वृक्षे करे आरोहण ॥ १५४ ॥

तबे—तत्पश्चात्; **याय**—जाती है; **तत्-उपरि**—उसके (परव्योम के) ऊपर; **गोलोक-**

वृन्दावन—गोलोक वृन्दावन की ओर, जहाँ कृष्ण रहते हैं; **कृष्ण-चरण**—भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर; **कल्प-वृक्षे**—कल्पवृक्ष पर; **करे आरोहण**—चढ़ जाती है।

अनुवाद

"हृदय में स्थित होने से तथा श्रवण-कीर्तन द्वारा सींचे जाने से भक्ति लता अधिकाधिक बढ़ती जाती है। इस तरह इसे कृष्ण के चरणकमल रूपी कल्पवृक्ष का आश्रय प्राप्त हो जाता है, जो परव्योम के सर्वोच्च क्षेत्र गोलोक वृन्दावन में निरन्तर वास करते हैं।

तात्पर्य

ब्रह्म-संहिता (५.३७) में कहा गया है :

आनन्द चिन्मय रसप्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"मैं आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ। वे अपने लोक गोलोक में श्रीमती राधारानी के साथ रहते हैं, जो उनकी आध्यात्मिक प्रतिमूर्ति तथा उनकी ह्लादिनी शक्ति स्वरूपा हैं। उनकी सखियाँ राधारानी की विश्वासपात्र हैं, जो उन्हीं की अंश-रूपा हैं और आनन्दमय आध्यात्मिक रस से ओतप्रोत रहती हैं।"

वैकुण्ठ जगत् में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा अपना विस्तार कर रखा है। उनका सनातन स्वरूप आनन्दमय तथा ज्ञानमय (*सच्चिदानन्द विग्रह*) है। गोलोक वृन्दावन ग्रह की हर वस्तु सच्चिदानन्द का आध्यात्मिक विस्तार है। वहाँ का हर व्यक्ति वही शक्ति *आनन्द चिन्मय रस* से पूर्ण है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनके सेवकों का सम्बन्ध *चिन्मय रस* है। कृष्ण तथा उनके पार्षदगण एवं उनका साज-सामान एक ही चिन्मय शक्ति से बने हैं। इस प्रकार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सारे आध्यात्मिक जगत् में व्याप्त हैं। जब वह चिन्मय रस शक्ति भौतिक शक्ति के माध्यम से विस्तारित होती है, तब वह सर्वव्यापक बन जाती है। आशय यह है कि यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपने ही धाम गोलोक वृन्दावन में रहते हैं, किन्तु वे सर्वत्र उपस्थित रहते हैं। *अण्डान्तरस्थ परमाणु चयान्तरस्थम्।* वे अनन्त ब्रह्माण्डों के भीतर उपस्थित

रहने वाले हैं और वे परमाणु के भीतर भी उपस्थित रहते हैं। *ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति*—वे समस्त जीवों के हृदय के भीतर भी उपस्थित रहते हैं। यही है उनकी सर्वव्यापक शक्ति।

गोलोक वृन्दावन आध्यात्मिक जगत् में सर्वोच्च ग्रह है। आध्यात्मिक जगत् को जाने के लिए भौतिक ब्रह्माण्ड के आवरण को भेदकर ब्रह्मलोक अर्थात् आध्यात्मिक तेज में से होकर जाना पड़ता है। तभी गोलोक वृन्दावन पहुँचा जा सकता है। आध्यात्मिक जगत् में अन्य लोक भी हैं, जो वैकुण्ठ ग्रह कहलाते हैं और इन वैकुण्ठ ग्रहों में भगवान् नारायण की पूजा-अर्चना आदर सहित की जाती है। इन सारे लोकों में *शान्त रस* व्याप्त रहता है। यहाँ पर कुछ भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से *दास्य रस* के सम्बन्ध में भी होते हैं। जहाँ तक सख्य रस का सम्बन्ध है, वैकुण्ठ में *गौरव-सख्य* (सम्मान की भावना से पूर्ण) से इस रस का प्रतिनिधित्व होता है। अन्य सख्य रस *विश्रम्भ* (समकक्ष भावना से पूर्ण) है, जो गोलोक वृन्दावन ग्रह में पाया जाता है। इसके ऊपर *वात्सल्य रस* (माता-पिता का प्रेम) भी है और इन सबसे बढ़कर है *माधुर्य-रस* (दाम्पत्य प्रेम) है। ये पाँचों रस आध्यात्मिक जगत् में जीव के भगवान् के साथ के सम्बन्ध में पूर्णतया प्रकट होते हैं। अतः भक्ति-लता को वैकुण्ठ में कृष्ण के चरणकमलों का आश्रय प्राप्त होता है।

তাহাঁ বিস্তারিত হঞা ফলে প্রেম-ফল ।
ইহাঁ মালী সেচে নিত্য শ্রবণাদি জল ॥১৫৫॥

ताहाँ विस्तारित हञा फले प्रेम-फल ।
इहाँ माली सेचे नित्य श्रवणादि जल ॥१५५॥

ताहाँ—गोलोक वृन्दावन में; **विस्तारित**—विस्तारित; **हञा**—होकर; **फले**—उत्पन्न करती है; **प्रेम-फल**—प्रेम फल (ईश्वर प्रेम); **इहाँ**—भौतिक संसार में, जहाँ भक्त अभी भी उपस्थित है; **माली**—माली की भाँति; **सेचे**—सींचता है; **नित्य**—नित्य; **श्रवण-आदि जल**—श्रवण, कीर्तन आदि का जल।

अनुवाद

"यह लता गोलोक वृन्दावन ग्रह में खूब बढ़ती है और यहीं इसमें

कृष्ण-प्रेम रूपी फल लगता है। यद्यपि माली भौतिक जगत् में रहता है, किन्तु वह नियमित रूप से श्रवण तथा कीर्तन रूपी जल से उसे सींचता है।

तात्पर्य

गोलोक वृन्दावन में भक्तों का पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। भक्त बड़े ही प्रेम से भगवान् की सेवा में लगा रहता है। ऐसा प्रेम श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस जगत् के लोगों को अपने उपदेशों में प्रदर्शित किया है। भक्ति-लता का फल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा तथा उनकी इन्द्रियों की तुष्टि करने की शुद्ध कामना है। *कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा धरे 'प्रेम' नाम* (*चैतन्य चरितामृत,* आदि ४.१६५)। आध्यात्मिक जगत् में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की इन्द्रियों को तुष्ट करने के अतिरिक्त भक्त की कोई दूसरी इच्छा ही नहीं रहती। भौतिक जगत् में रहते हुए बद्धात्मा न तो समझ सकता है, न ही सराह सकता है कि भौतिक जगत् में भक्त किस तरह प्रेमवश भगवान् की सेवा कर सकता है और उनकी इन्द्रियों को तुष्ट करने में सदैव लगा रह सकता है। यद्यपि शुद्ध भक्त भौतिक जगत् में दिखता है, किन्तु वह भगवान् की अन्तरंग सेवा में सदा लगा रहता है। सामान्य कनिष्ठ भक्त इसका अनुमान नहीं लगा सकता है। इसीलिए कहा जाता है—*वैष्णवेर क्रिया-मुद्रा विज्ञेह ना बुझय।* शुद्ध वैष्णव के कार्यकलापों को इस जगत् के बड़े-बड़े विद्वान भी नहीं समझ पाते।

प्रत्येक जीव अपने कर्मों के अनुसार इस ब्रह्माण्ड में तथा विभिन्न लोकों में नाना प्रकार की योनियों में भ्रमण करता रहता है। लाखों जीवों में से कोई एक भाग्यशाली जीव भक्ति-लता के बीज को प्राप्त कर पाता है। वह गुरु तथा कृष्ण की कृपा से इस भक्ति-लता को श्रवण-कीर्तन के जल से सींचता है। इस तरह भक्ति-लता का बीज अंकुरित होता है और लता बढ़कर सारे ब्रह्माण्ड को पार करती हुई ब्रह्माण्ड के आवरण को भेदकर वैकुण्ठ लोक पहुँच जाती है। यह भक्ति-लता तब तक बढ़ती जाती है, जब तक वह सर्वोच्च ग्रह मण्डल गोलोक वृन्दावन नहीं पहुँच जाती, जहाँ कृष्ण निवास करते हैं। वहाँ यह लता भगवान् के चरणकमलों का आश्रय ग्रहण करती है और यही उसका अन्तिम गन्तव्य है। तब इस लता में भगवत्प्रेम रूपी फल लगने लगते हैं। जो भक्त इस

लता का पालन-पोषण करता है, उसका यह कर्तव्य है कि वह बहुत सावधान रहे। कहा गया है कि इस लता को सींचते रहना चाहिए—*इहाँ माली सेचे नित्य श्रवणादि जल।* ऐसा नहीं है कि एक अवस्था में आकर मनुष्य श्रवण-कीर्तन बन्द कर सकता है और परिपक्व भक्त बन जाता है। जो बन्द कर देता है, वह अवश्य ही भक्ति से गिर जाता है। भले ही कोई भक्ति में कितना ही उन्नत क्यों न हो, उसे श्रवण-कीर्तन द्वारा सिंचन की प्रक्रिया को बन्द नहीं करना चाहिए। यदि कोई इस विधि को बन्द कर देता है, तो वह अपराध वश ही ऐसा करता है। इसका वर्णन अगले श्लोक में हुआ है।

यदि वैष्णव-अपराध उठे हाती माता ।
उपाड़े वा छिण्डे, तार शुखि' याय पाता ॥ १५६॥

য়দি वैष्णव-अपराध उठे हाती माता ।
उपाड़े वा छिण्डे, तार शुखि' য়ाय पाता ॥ १५६॥

য়दि—यदि; **वैष्णव-अपराध**—वैष्णव के चरणों में अपराध; **उठे**—उठता है; **हाती**—एक हाथी; **माता**—उन्मत्त; **उपाड़े**—उखाड़ देता है; **वा**—अथवा; **छिण्डे**—तोड़ देता है; **तार**—लता का; **शुखि'**—सूख; **য়ाय**—जाता है; **पाता**—पत्ता।

अनुवाद

"यदि कोई भक्त भौतिक जगत् में भक्ति-लता का विकास करते हुए किसी वैष्णव के चरणों में अपराध करता है, तो उसके अपराध की तुलना उस पागल हाथी से की जाती है, जो लता को उखाड़कर उसे छिन्न-भिन्न कर देता है। इस तरह लता की पत्तियाँ सूख जाती हैं।

तात्पर्य

वैष्णव की संगति से मनुष्य की भक्ति-भावना बढ़ती है :

ताँदेर चरण सेवि भक्त-सने वास।
जनमे जनमे हय, एइ अभिलाष॥

नरोत्तम दास ठाकुर अपना व्यक्तिगत दृष्टान्त प्रस्तुत करते हुए बल देकर कहते हैं कि भक्त को अपने पूर्ववर्ती आचार्य को प्रसन्न रखना सदैव स्मरण में रखना चाहिए। गोस्वामियों का प्रतिनिधित्व गुरु द्वारा होता है। कोई भी व्यक्ति

आचार्य-परम्परा का दृढ़तापूर्वक पालन किये बिना आचार्य नहीं बन सकता। जो सचमुच भक्ति में प्रगति करने का इच्छुक हो, उसे केवल अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की इच्छाओं को तुष्ट करने की इच्छा करनी चाहिए। *एइ छय गोसाञि यार, मुइ तार दास।* उसे अपने आपको आचार्यों के दास का दास समझना चाहिए और इस भाव से वैष्णवों के समाज में रहना चाहिए। किन्तु यदि कोई यह सोचने लगे कि वह परिपक्व हो गया है और वैष्णवों की संगति से अलग रह सकता है और इस तरह वह वैष्णव के प्रति अपराध करके सभी विधि-विधानों का त्याग कर देता है, तो उसकी स्थिति बड़ी खतरनाक बन जाती है। पवित्र नाम के विरुद्ध अपराधों की व्याख्या आदि लीला (८.२४) में की जा चुकी है। विधि-विधानों का परित्याग करके मनमाने ढंग से रहने की तुलना उस प्रमत्त हाथी से की गई है, जो बलपूर्वक भक्ति-लता को उखाड़कर खंड-खंड कर देता है। इस तरह भक्ति-लता मुरझा जाती है। ऐसी स्थिति तब विशेष रूप से उत्पन्न होती है, जब कोई अपने गुरु के आदेशों का उल्लंघन करता है। यह *गुरु-अवज्ञा* कहलाती है। अत: भक्त को सतर्क रहना चाहिए कि गुरु के आदेशों का उल्लंघन करके उनके विरुद्ध कोई अपराध न कर बैठे। गुरु के आदेशों का उल्लंघन होते ही भक्ति-लता उखड़नी शुरू हो जाती है और उसकी सारी पत्तियाँ धीरे-धीरे सूख जाती हैं।

तातेमाली यत्न करि' करे आवरण ।
अपराध-हस्तीर यैछे ना हय उदगम ॥ १५७॥

तातेमाली यत्न करि' करे आवरण ।
अपराध-हस्तीर यैछे ना हय उद्गम ॥ १५७॥

ताते—अत:; **माली**—माली भक्त; **यत्न करि'**—ध्यानपूर्वक ; **करे**—लगाता है; **आवरण**—रक्षात्मक बाड़; **अपराध**—अपराधों के; **हस्तीर**—हाथी की; **यैछे**—ताकि; **ना**—न; **हय**—हो; **उद्गम**—उत्पत्ति।

अनुवाद

"माली को चारों और बाड़ बनाकर लता की रक्षा करनी चाहिए, जिससे अपराधों का शक्तिशाली हाथी भीतर न प्रवेश कर पाए।

तात्पर्य

जब भक्ति-लता बढ़ रही हो, तब भक्त को उसके चारों ओर बाड़ बनाकर उसकी रक्षा करनी चाहिए। कनिष्ठ भक्त की रक्षा शुद्ध भक्तों का घेरा बनाकर करनी चाहिए। इससे प्रमत्त हाथी को भक्ति-लता को उखाड़ फेंकने का अवसर नहीं मिल पायेगा। जब कोई अभक्तों की संगति करता है, तो प्रमत्त हाथी खुला छूट जाता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है—*असत-सङ्ग-त्याग—एइ वैष्णव-आचार।* वैष्णव का पहला कर्तव्य यह है कि वह अभक्तों की संगति त्याग दे। किन्तु तथाकथित परिपक्व भक्त शुद्ध भक्तों की संगति छोड़कर बहुत बड़ा अपराध करता है। जीव सामाजिक प्राणी है, अतः यदि कोई शुद्ध भक्तों की संगति त्याग देता है, तो वह अभक्तों की संगति करेगा (*असत-सङ्ग*)। अभक्तों के सम्पर्क में आने से तथा अभक्तिमय कार्यों में व्यस्त रहने से तथाकथित परिपक्व भक्त प्रमत्त हाथी रूपी अपराध के प्रभाव में आ जाता है। ऐसे अपराध से भक्ति-लता में जो भी वृद्धि होती है, वह तुरन्त उन्मूलित हो जाती है। अतः लता के चारों ओर बाड़ लगाकर अर्थात् विधि-विधानों का पालन करके तथा शुद्ध भक्तों की संगति करके उसकी रक्षा करनी चाहिए।

यदि कोई यह सोचता है कि कृष्णभावनामृत संघ में अनेकानेक झूठे भक्त या अभक्त हैं, फिर भी उसे संघ से जुड़े रहना चाहिए। यदि कोई यह सोचता है कि संघ के सदस्य शुद्ध भक्त नहीं हैं, तो वह सीधे गुरु की संगति कर सकता है और यदि कोई सन्देह हो, तो उसका निवारण गुरु से करवाना चाहिए। किन्तु भगवान् के पवित्र नाम का श्रवण-कीर्तन तथा विधि-विधानों सम्बन्धी गुरु के आदेशों का पालन किये बिना कोई शुद्ध भक्त नहीं बन सकता। केवल मनोकल्पना से उसका पतन होगा। अभक्तों की संगति करने से वह नियमों का उल्लंघन करता है, जिससे उसका विनाश हो जाता है। श्रील रूप गोस्वामी ने *उपदेशामृत* (२) में कहा है :

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः।
जनसङ्गश्च लौल्यं च षड्भिर्भक्तिर्विनश्यति॥

"जब कोई व्यक्ति निम्नलिखित छः कार्यों में अत्यधिक लग जाता है, तब उसकी भक्ति विनष्ट हो जाती है (१) आवश्यकता से अधिक भोजन करना

या आवश्यकता से अधिक धन संग्रह करना, (२) जिन संसारी वस्तुओं को प्राप्त कर सकना अत्यन्त कठिन हो, उनके लिए अत्यधिक प्रयास करना, (३) सांसारिक विषयों के बारे में व्यर्थ बातें करना, (४) शास्त्रों के विधि-विधानों का पालन किसी आध्यात्मिक प्रगति के लिए नहीं, अपितु नाम के लिए करना या शास्त्रीय नियमों का निषेध करके मनमाने ढंग से कार्य करना, (५) कृष्णभावनामृत में रुचि न रखने वाले संसारी प्रवृत्ति वाले लोगों की संगति करना तथा (६) भौतिक उपलब्धियों के लिए लोभ रखना।"

किन्तु यदि लतार सङ्गे उठे 'उपशाखा' ।
भुक्ति-मुक्ति-वाञ्छा, यत असङ्ख्य तार लेखा ॥ १५८॥
किन्तु ग्रदि लतार सङ्गे उठे 'उपशाखा' ।
भुक्ति-मुक्ति-वाञ्छा, ग्रत असङ्ख्य तार लेखा ॥ १५८॥

किन्तु—किन्तु; **ग्रदि**—यदि; **लतार**—भक्ति लता; **सङ्गे**—के साथ; **उठे**—उठ जाती है; **उपशाखा**—अवांछित उपशाखा; **भुक्ति**—भौतिक तृप्ति के लिए; **मुक्ति**—भौतिक संसार से मुक्ति के लिए; **वाञ्छा**—इच्छाएँ, कामनाएँ; **ग्रत**—जितनी भी हों; **असङ्ख्य**—असंख्य; **तार**—अवांछित लताओं का; **लेखा**—वर्णन।

अनुवाद

"कभी-कभी भक्ति-लता के साथ-साथ भौतिक भोग की इच्छाओं तथा भौतिक जगत् से मुक्ति की लालसा की अवांछित लताएँ भी बढ़ने लगती हैं। ऐसी अवांछित लताओं की किस्में असंख्य हैं।

'निषिद्धाचार', 'कुटीनाटी', 'जीव-हिंसन' ।
'लाभ', 'पूजा', 'प्रतिष्ठादि' यत उपशाखा-गण ॥ १५९॥
'निषिद्धाचार', 'कुटीनाटी', 'जीव-हिंसन' ।
'लाभ', 'पूजा', 'प्रतिष्ठादि' ग्रत उपशाखा-गण ॥ १५९॥

निषिद्ध-आचार—ऐसा व्यवहार जो सिद्धि प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति को नहीं करना चाहिए; **कुटीनाटी**—कूटनीति; **जीव-हिंसन**—पशुओं या आत्मा की अनावश्यक हत्या; **लाभ**—भौतिक दृष्टि के अनुसार लाभ; **पूजा**—भौतिक लोगों को सन्तुष्ट करके प्रतिष्ठा पाना;

प्रतिष्ठ-आदि—भौतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बनना; **ग्रत**—ये सब; **उपशाखा-गण**—अनावश्यक उपशाखा।

अनुवाद

"भक्ति-लता के साथ बढ़ने वाली कुछ अवांछित लताएँ हैं—सिद्धि प्राप्त करने के प्रयास में लगे लोगों के लिए निषिद्ध आचरण, कूटनीति, जीव-हिंसा, सांसारिक लाभ, संसारी पूजा तथा प्रतिष्ठा। ये सभी अवांछित लताएँ हैं।

तात्पर्य

जो लोग पूर्ण बनने के लिए वास्तव में प्रयत्नशील हैं, उनके लिए निश्चित आचार-संहिता होती है। हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में अपने अनुयायियों को परामर्श देते हैं कि वे मांसाहार, जुआ, अवैध सम्बन्ध तथा नशा न करें। जो इन कार्यों में लगे रहते हैं, वे कभी पूर्ण नहीं बन सकते। अतः ये नियम उन लोगों के लिए हैं, जो पूर्ण बनना और भगवद्धाम लौट जाना चाहते हैं। *कूटीनाटी* या कूटनीति कभी भी आत्मा को तुष्ट नहीं कर सकती। यह शरीर या मन को भी तुष्ट नहीं कर सकती। दुष्ट मन सदैव शंकित रहता है। अतः हमारे व्यवहार हमेशा सीधे-सादे तथा वैदिक महाजनों द्वारा स्वीकृत होने चाहिए। यदि हम कूटनीति द्वारा या द्वैतभाव से लोगों के साथ आचरण करते हैं, तो हमारी आध्यात्मिक प्रगति में बाधा आती है। *जीव-हिंसन* शब्द अर्थ है पशु-वध करना या अन्य जीवों से ईर्ष्या करना। निरीह पशुओं का वध निस्सन्देह उन पशुओं से ईर्ष्या के कारण किया जाता है। यह मनुष्य शरीर कृष्णभावना को समझने (*अथातो ब्रह्म जिज्ञासा*), परम ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा करने के लिए मिला है। इस मनुष्य रूप में परम ब्रह्म को समझने का अवसर हर एक को मिलता है। मानव समाज के तथाकथित नेता मानव जीवन के असली उद्देश्य से अनजान होने के कारण आर्थिक विकास में लगे रहते हैं। यह पथभ्रष्ट करने वाला है। हर राज्य तथा हर समाज आहार, निद्रा, स्वरक्षण तथा मैथुन के साधनों में सुधार लाने पर तुला हुआ है। किन्तु यह मानव-जीवन इन चार पाशविक सिद्धान्तों के लिए ही नहीं है। आहार, निद्रा, स्वरक्षण तथा मैथुन तो पशु-जगत् की समस्याएँ हैं, जिनका हल पशुओं ने बिना किसी कठिनाई के

कर लिया है। तो फिर मानव-समाज को इन समस्याओं को हल करने में इतना व्यस्त क्यों रहना चाहिए? कठिनाई तो यह है कि लोग इस सीधे-सादे दर्शन को समझने के लिए प्रशिक्षित नहीं हैं। वे सोचते हैं कि सभ्यता के विकास का अर्थ है अधिकाधिक इन्द्रियतृप्ति।

ऐसे कई धार्मिक प्रचारक हैं, जिन्हें इसका पता नहीं है कि जीवन की आखरी समस्याओं का किस तरह समाधान किया जाए। वे भी लोगों को इन्द्रियतृप्ति के रूप में ही शिक्षा देने का प्रयास करते हैं। यह भी *जीव-हिंसा* ही है। धर्म के प्रचारक असली ज्ञान न देकर जनता को भ्रमित करते हैं। जहाँ तक भौतिक लाभों का सम्बन्ध है, हर व्यक्ति को समझना चाहिए कि मृत्यु के समय सारे लाभों से हाथ धोना होगा। दुर्भाग्यवश लोग यह नहीं जानते कि मृत्यु के बाद भी जीवन है; अत: संसारी लोग भौतिक धन संग्रह करने में जुटे रहकर समय बरबाद करते रहते हैं, जिसे मृत्यु के समय छोड़ जाना पड़ेगा। ऐसे लाभ का कोई शाश्वत मूल्य नहीं होता। इसी तरह संसारी लोगों द्वारा पूजित होना भी व्यर्थ है, क्योंकि मृत्यु के बाद मनुष्य को दूसरा शरीर ग्रहण करना होता है। भौतिक पूजा तथा उपाधियाँ ऐसे अलंकरण हैं, जिन्हें अगले शरीर तक नहीं ले जाया जा सकता। अगले जीवन में सब कुछ भूल जाना पड़ता है।

इस श्लोक में इन अवरोधों को अवांछित लताओं के रूप में वर्णित किया गया है। ये लताएँ असली लता, *भक्ति-लता-बीज* के लिए अवरोध मात्र बनती हैं। अतएव इन अवांछित वस्तुओं से बचने का सावधानी से प्रयास करना चाहिए। कभी-कभी जब ये अवांछित लताएँ भक्ति-लता से लिपटी हुई होती हैं, तो ये बिल्कुल *भक्ति-लता* जैसी प्रतीत होती हैं—उसी आकार की तथा उसी जाति की—किन्तु ऐसा होने पर भी वे उपशाखाएँ कहलाती हैं। शुद्ध भक्त भक्ति-लता तथा भौतिक-लता में अन्तर कर सकता है, अतएव वह उनकीर पहचान करने में और उन्हें एक दूसरे से अलग रखने में सदैव सतर्क रहता है।

सेक-जल पाञा उपशाखा बाड़ि' याय ।
स्तब्ध हञा मूल-शाखा बाड़िते ना पाय ॥ १६० ॥

सेक-जल पाञा उपशाखा बाड़ि' ग्राय ।
स्तब्ध हञा मूल-शाखा बाड़िते ना पाय ॥ १६० ॥

सेक-जल—सींचने का जल; **पाञा**—पाकर; **उपशाखा**—उपशाखाएँ; **बाड़ि' ग्राय**—बढ़ जाती हैं; **स्तब्ध हञा**—अवरूद्ध होकर; **मूल-शाखा**—मूल शाखा; **बाड़िते**—बढ़ने में; **ना पाय**—सक्षम नहीं होती।

अनुवाद

"यदि भक्ति-लता तथा अन्य लताओं में ठीक से भेद नहीं किया जाता, तो जल सींचने की प्रक्रिया का दुरुपयोग हो जाता है, क्योंकि भक्ति-लता बढ़ नहीं पाती है, जबकि अन्य लताएँ हरी-भरी होती जाती हैं।

तात्पर्य

यदि अपराध करते हुए कोई हरे कृष्ण मन्त्र का जप करता है, तो ये अवांछित लताएँ बढ़ जायेंगी। किसी को हरे कृष्ण मन्त्र का दुरुपयोग किसी भौतिक लाभ के लिए नहीं करना चाहिए। जैसाकि श्लोक १५९ में कहा गया है :

'निषिद्धाचार' 'कुटीनाटी,' 'जीव हिंसन'।
'लाभ,' 'पूजा,' 'प्रतिष्ठादि' यत उपशाखा गण॥

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अवांछित लताओं का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि यदि कोई अपराधों के परित्याग का प्रयास किये बिना श्रवण-कीर्तन करता है, तो वह इन्द्रियतृप्ति में आसक्त हो जाता है। वह मायावादियों की तरह भौतिक बन्धन से मुक्त भी होना चाहेगा अथवा योग-सिद्धियों से आकृष्ट होकर आश्चर्यजनक योग शक्तियाँ प्राप्त करना चाहेगा। यदि वह अद्‌भुत भौतिक कार्यों में आसक्त होता है, तो वह *सिद्धि-लोभी* कहलाता है। उसे कूटनीति अथवा दुराचार के कारण कष्ट भोगना पड़ सकता है या फिर वह स्त्रियों के साथ अवैध सम्बन्ध बना सकता है। अन्य लोग भक्ति का दिखावा कर सकते हैं जैसे कि प्राकृत सहजिये करते हैं; अथवा वह किसी जाति या वंश के साथ जुड़कर आध्यात्मिक क्षेत्र में अपने वर्चस्व का दावा करके अपने विचारों को बढ़ावा देने का प्रयास कर सकता है। इस तरह कुल-रीति

के बल पर वह छद्म गुरु बन सकता है। वह चार पापकर्मों में—अवैध सम्बन्ध, नशा, जुआ तथा मांसाहार में—लिप्त हो सकता है या फिर वह वैष्णव को किसी संसारी जाति-पाँति का मानने लग सकता है। वह सोच सकता है, "यह हिन्दू वैष्णव है, यह यूरोपीय वैष्णव है। यूरोपीय वैष्णव को मन्दिर में नहीं घुसने दिया जा सकता।" दूसरे शब्दों में, वह वैष्णवों को जन्म के आधार पर ब्राह्मण वैष्णव, शूद्र वैष्णव, म्लेच्छ वैष्णव इत्यादि समझने लगता है। वह व्यवसाय के तौर पर हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन या *श्रीमद्भागवत* का प्रवचन करने का प्रयास कर सकता है या अवैध उपायों से अपनी आर्थिक अवस्था सुधारने का प्रयत्न कर सकता है। वह स्वयं भौतिक सम्मान पाने के लिए किसी एकान्त स्थान में जप करके सस्ता वैष्णव बनने या अभक्तों के साथ अपने दर्शन या आध्यात्मिक जीवन सम्बन्धी समझौता करके भौतिक यश कमाने का इच्छुक या वंशानुक्रम से चली आ रही जाति-प्रथा का समर्थक बन सकता है। ये सब निजी इन्द्रियतृप्ति की कमियाँ हैं। अबोध लोगों को धोखा देने मात्र के लिए वह उच्च आध्यात्मिक जीवन का स्वांग करता है और साधु, महात्मा या धार्मिक व्यक्ति माना जाने लगता है। इसका अर्थ यही होता है कि तथाकथित भक्त इन सारी अवांछित लताओं का शिकार हो जाता है और भक्ति-लता-बीज का विकास रुक जाता है।

प्रथमेई उपशाखार करये छेदन ।
तबे मूल-शाखा बाड़ि' याय वृन्दावन ॥ १६१॥

प्रथमेइ उपशाखार करये छेदन ।
तबे मूल-शाखा बाड़ि' याय वृन्दावन ॥ १६१॥

प्रथमेइ—आरम्भ से ही; **उपशाखार**—उपशाखाओं की; **करये**—करता है; **छेदन**—कटाई; **तबे**—तभी; **मूल-शाखा**—मूल शाखा; **बाड़ि'**—बढ़ती; **याय**—जाती है; **वृन्दावन**—वृन्दावन में श्रीकृष्ण के चरणकमलों की ओर।

अनुवाद

"जैसे ही कोई बुद्धिमान भक्त मूल लता के पास अवांछित लता को बढ़ते देखे, उस लता को उसे तुरन्त काट देना चाहिए। तब भक्ति-लता

रूपी असली लता ठीक से बढ़ती है और वह भगवद्धाम लौटकर कृष्ण के चरणकमलों में आश्रय पाती है।

तात्पर्य

यदि कोई अवांछित लता के फेर में पड़ता है और उसका शिकार हो जाता है, तो वह भगवद्धाम वापस नहीं जा पाता, अपितु इस भौतिक जगत् में रह जाता है और ऐसे कार्यों में लगा रहता है, जिनका शुद्ध भक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं होता। ऐसा व्यक्ति भले ही स्वर्ग क्यों न प्राप्त कर ले, किन्तु इस जगत् में रहने के कारण वह तीन प्रकार के भौतिक ताप भोगता रहता है।

'प्रेम-फल' पाकि' पड़े, माली आस्वादय ।
लता अवलम्बि' माली 'कल्प-वृक्ष' पाय ॥ १६२॥

'प्रेम-फल' पाकि' पड़े, माली आस्वादय ।
लता अवलम्बि' माली 'कल्प-वृक्ष' पाय ॥ १६२॥

प्रेम-फल—भगवत्-प्रेम का फल; **पाकि'**—पककर; **पड़े**—गिर जाता है; **माली**—माली; **आस्वादय**—रस का आस्वादन करता है; **लता अवलम्बि'**—उगती हुई भक्ति लता का लाभ उठाकर; **माली**—माली; **कल्प-वृक्ष पाय**—गोलोक वृन्दावन में कल्पवृक्ष तक पहुँचता है।

अनुवाद

"जब भक्ति का फल पककर नीचे गिर जाता है, तब माली उस फल को चखता है। इस तरह वह लता का लाभ उठाकर गोलोक वृन्दावन में कृष्ण के चरणकमल रूपी कल्पवृक्ष तक पहुँच जाता है।

ताहाँ सेइ कल्प-वृक्षेर करये सेवन ।
सुखे प्रेम-फल-रस करे आस्वादन ॥ १६३॥

ताहाँ सेइ कल्प-वृक्षेर करये सेवन ।
सुखे प्रेम-फल-रस करे आस्वादन ॥ १६३॥

ताहाँ—वहाँ गोलोक वृन्दावन में; **सेइ कल्प-वृक्षेर**—कल्पवृक्ष रूपी श्रीकृष्ण के चरणकमलों की; **करये सेवन**—सेवा में लग जाता है; **सुखे**—दिव्य आनन्द में; **प्रेम-फल-रस**—भक्ति फल के रस का; **करे**—करता है; **आस्वादन**—आस्वादन।

अनुवाद

"वहाँ पर भक्त भगवान् के कल्पवृक्ष तुल्य चरणकमलों की सेवा करता है। वह बड़े ही आनन्दपूर्वक प्रेम रूपी फल का स्वाद लेता है और शाश्वत रूप से सुखी बन जाता है।

तात्पर्य

ताहाँ शब्द सूचित करता है कि वैकुण्ठ में मनुष्य भक्ति रूपी फल के रस का स्वाद चखकर आनन्दपूर्ण हो सकता है।

এইত পরম-ফল 'পরম-পুরুষার্থ' ।
যাঁর আগে তৃণ-তুল্য চারি পুরুষার্থ ॥ ১৬৪॥

এइত পরম-ফল 'পরম-পুরুষার্থ' ।
য়াঁর আগে তৃণ-তুল্য চারি পুরুষার্থ ॥ ১৬৪॥

এइত—यह; **परम-फल**—जीवन का परम लक्ष्य; **परम**—परम; **पुरुष-अर्थ**—जीव का हित; **য়াঁর আগে**—जिसकी उपस्थिति में; **तृण-तुल्य**—बहुत तुच्छ (तृण के समान); **चारि**—चार; **पुरुष-अर्थ**—मनुष्य जीवन की विभिन्न उपलब्धियाँ।

अनुवाद

"गोलोक वृन्दावन में भक्ति रूपी फल का आस्वादन ही जीवन की परम सिद्धि है। इस सिद्धि के आगे चार प्रकार की भौतिक सिद्धियाँ—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—तृण के समान हैं।

तात्पर्य

ज्ञानियों की सर्वोच्च उपलब्धि *मोक्ष* अर्थात् भगवान् से एक हो जाना होती है। योगियों की सर्वोच्च उपलब्धि अष्ट सिद्धियाँ होती हैं—यथा अणिमा, लघिमा तथा प्राप्ति इत्यादि। किन्तु भगवद्धाम वापस जाकर भक्त वहाँ भगवान् के चरणकमलों की भक्ति रूपी फल का जो आस्वादन करता है और शाश्वत आनन्द प्राप्त करता है, उसकी तुलना में ये सब तृण तुल्य हैं। भौतिक सिद्धियाँ, यहाँ तक कि मोक्ष तक पाना नगण्य है, अत: शुद्ध भक्त इनमें कोई रुचि नहीं लेता। उसकी एकमात्र रुचि भगवद्भक्ति को पूर्ण बनाने में रहती हैं। अगले श्लोक में निर्विशेषवादी अद्वैतवादी दार्शनिकों के आनन्द की निन्दा की गई है। यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत *ललित-माधव* में भी प्राप्य है।

ऋद्धा सिद्धि-व्रज-विजयिता सत्य-धर्मा समाधिर्
ब्रह्मानन्दो गुरुरपि चमत्कारयत्येव तावत् ।
यावत्प्रेम्णां मधु-रिपु-वशी-कार-सिद्धौषधीनां
गन्धोऽप्यन्तः-करण-सरणी-पान्थतां न प्रयाति ॥ १६५ ॥

ऋद्धा सिद्धि-व्रज-विजयिता सत्य-धर्मा समाधिर्
ब्रह्मानन्दो गुरुरपि चमत्कारयत्येव तावत् ।
यावत्प्रेम्णां मधु-रिपु-वशी-कार-सिद्धौषधीनां
गन्धोऽप्यन्तः-करण-सरणी-पान्थतां न प्रयाति ॥ १६५ ॥

ऋद्धा—सर्वोत्तम; **सिद्धि-व्रज**—योगियों की भौतिक सिद्धियों का समूह (अणिमा, लघिमा, प्राप्ति इत्यादि); **विजयिता**—विजय; **सत्य-धर्मा**—सिद्धि के धार्मिक नियम (सत्य, शम, तितिक्षा इत्यादि); **समाधिः**—ध्यान की योगिक सिद्धि; **ब्रह्म-आनन्दः**—अद्वैत का आध्यात्मिक आनन्द का जीवन; **गुरुः**—भौतिक विचार से अति उच्च; **अपि**—यद्यपि; **चमत्कारयति**—महत्त्वपूर्ण लगते हैं; **एव**—मात्र; **तावत्**—तब तक; **यावत्**—जब तक; **प्रेम्णाम्**—कृष्ण-प्रेम का; **मधु-रिपु**—मधु दैत्य के शत्रु, कृष्ण; **वशी-कार**—वश में करके; **सिद्ध-औषधीनाम्**—सिद्ध औषधियों की; **गन्धः**—गन्ध; **अपि**—भी; **अन्तः-करण-सरणी-पान्थताम्**—हृदय पथ का यात्री; **न प्रयाति**—नहीं होता।

अनुवाद

"'जब तक कृष्ण के उस शुद्ध प्रेम की रंचमात्र भी सुगंध नहीं होती, जो हृदय के भीतर कृष्ण को वश में लाने की पूर्ण औषधि है, तब तक भौतिक सिद्धियाँ, ब्राह्मण की पूर्णता (सत्य, शम, तितिक्षा इत्यादि), योगियों की समाधि तथा ब्रह्मानन्द—ये सभी मनुष्य को अद्भुत लगते हैं।'

तात्पर्य

सिद्धिव्रज, ब्राह्मण-योग्यता, योग-समाधि तथा ब्रह्म में एकाकार होने जैसी विविध भौतिक सिद्धियाँ होती हैं। ये सारी भौतिक सिद्धियाँ संसारी व्यक्तियों के लिए अत्यन्त मोहक हैं, किन्तु इनकी चमक तभी तक रहती है, जब तक कोई भक्ति की शरण ग्रहण नहीं करता। भक्ति तो समस्त ब्रह्माण्ड के नियन्ता पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को भी वश में करने वाली है। गोलोक वृन्दावन के निवासी पाँच दिव्य रसों—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य—का

अभ्यास करते हैं। ये सभी भगवान् को इस तरह प्रसन्न कर लेते हैं कि वे भक्तों के वशीभूत हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, माता यशोदा की भक्ति इतनी उन्नत थीं कि कृष्ण ने उनकी छड़ी के वश में रहना स्वीकार कर लिया था। दूसरे शब्दों में, ये पाँचों रस इतने महान् तथा भव्य हैं कि उनसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वशीभूत हो जाते हैं। किन्तु भौतिक जगत् में तथाकथित सिद्धियाँ अपना तेज तभी तक दिखलाती हैं, जब तक मनुष्य भक्ति में रुचि नहीं दिखलाता। दूसरे शब्दों में, भक्ति इतनी महान् तथा प्रभावशाली होती है कि यह परम नियन्ता कृष्ण को भी वश में कर सकती है। कर्मियों, ज्ञानियों तथा योगियों की सिद्धियाँ तभी तक आकर्षक प्रतीत होती हैं, जब तक कोई भक्ति को प्राप्त नहीं कर लेता।

'शुद्ध-भक्ति' हैते हय 'प्रेमा' उत्पन्न ।
अतएव शुद्ध-भक्तिर कहिये 'लक्षण' ॥ १६६॥

'शुद्ध-भक्ति' हैते हय 'प्रेमा' उत्पन्न ।
अतएव शुद्ध-भक्तिर कहिये 'लक्षण' ॥ १६६॥

शुद्ध-भक्ति—भौतिक कल्मष से रहित शुद्ध भक्ति; **हैते**—से; **हय**—होता है; **प्रेमा**—भगवत्प्रेम; **उत्पन्न**—उत्पन्न; **अतएव**—इसलिए; **शुद्ध-भक्तिर**—शुद्ध भक्ति के; **कहिये**—मैं कहता हूँ; **लक्षण**—लक्षण।

अनुवाद

"शुद्ध भक्ति प्राप्त होने पर मनुष्य में भगवत्प्रेम उत्पन्न होता है; अतएव मैं शुद्ध भक्ति के कुछ लक्षणों का वर्णन करता हूँ।

तात्पर्य

भगवद्गीता (१८.५५) में कहा गया है— *भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः ।* भक्ति को अपनाये बिना मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को उनके यथार्थ रूप में नहीं समझ सकता।

अन्याभिलाषिता-शून्यं ज्ञान-कर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानु-शीलनं भक्तिरुत्तमा ॥ १६७॥

अन्याभिलाषिता-शून्यं ज्ञान-कर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानु-शीलनं भक्तिरुत्तमा ॥ १६७॥

अन्य-अभिलाषिता-शून्यम्—भगवान् कृष्ण की सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी भी इच्छा से रहित अथवा भौतिक कामनाओं के बिना (जैसे मांसाहार, अवैध सम्बन्ध, जुए के लिए); **ज्ञान**—अद्वैत मायावादियों का दर्शन ज्ञान*; **कर्म**—सकाम कर्मों से; **आदि**—वैराग्य के कृत्रिम अभ्यास से, योग के यांत्रिक अभ्यास से, सांख्य दर्शन के अध्ययन से आदि; **अनावृतम्**—न ढका हुआ; **आनुकूल्येन**—अनुकूल; **कृष्ण-अनुशीलनम्**—कृष्ण की सेवा का विकास; **भक्तिः उत्तमा**—प्रथम श्रेणी की भक्ति।

अनुवाद

"'जब प्रथम श्रेणी की भक्ति विकसित होती है, तब मनुष्य को समस्त भौतिक इच्छाओं, अद्वैत-दर्शन से प्राप्त ज्ञान तथा सकाम कर्म से रहित हो जाना चाहिए। भक्त को कृष्ण की इच्छानुसार अनुकूल भाव से उनकी निरन्तर सेवा करनी चाहिए।'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.१.११) में भी पाया जाता है। *भगवद्गीता* (९.३४ तथा १८.६५) से हम जानते हैं कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की इच्छा है कि हम सदैव उनका चिन्तन करें (*मन्मनाभव मद्भक्तो*)। हर व्यक्ति को उनका भक्त बनना चाहिए, किसी देवता का नहीं। हर व्यक्ति को मन्दिर में अर्चन के साथ उनकी भक्ति में लग जाना चाहिए। *मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।* हर व्यक्ति को सर्वदा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को प्रणाम करना चाहिए। ये भगवान् की इच्छाएँ हैं, अतएव जो उनकी इच्छाओं को अनुकूल भाव से पूरा करता है, वही वास्तव में शुद्ध भक्त है। कृष्ण चाहते हैं कि हर व्यक्ति उनकी शरण में आये और भक्ति का अर्थ है इस उपदेश का सारे विश्व में प्रचार करना। *भगवद्गीता* (१८.६९) में भगवान् स्पष्ट कहते हैं—*न च तस्मान् मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः*—जो सबके लाभ के लिए *भगवद्गीता* के उपदेश का प्रचार करता है, वह भगवान् कृष्ण को सबसे अधिक प्रिय है। भगवान् ने *भगवद्गीता* का प्रवचन इसलिए किया, जिससे

*यहाँ *ज्ञान* भक्ति में पूर्ण ज्ञान का निर्देश नहीं करता है। मनुष्य को वेदों के पूर्ण ज्ञान के साथ भक्तिमयी सेवा के मार्ग को सीखना पड़ता है (*भक्त्याश्रुतगृहीतया—श्रीमद्भागवत* १.२.१२)।

मानव समाज सभी दृष्टियों से—राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, दार्शनिक तथा धार्मिक दृष्टियों से—भलीभाँति व्यवस्थित हो सके। मानव-समाज का सुधार कृष्णभावनामृत आन्दोलन द्वारा किसी भी दृष्टि से किया जा सकता है; अत: जो भी व्यक्ति ब्रह्माण्ड के समस्त बद्धजीवों के लाभ हेतु कृष्णभावनामृत के इस दर्शन का प्रसार करता है, वह पूर्णरूपेण शुद्ध भक्त है।

इसकी कसौटी यही है कि भक्त को यह जानना चाहिए कि कृष्ण उससे क्या चाहते हैं। यह समझ कृष्ण के प्रामाणिक प्रतिनिधि स्वरूप गुरु के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। श्रील रूप गोस्वामी का उपदेश है—*आदौ गुर्वाश्रयम्* । जो सचमुच भगवान् की भक्तिमय सेवा करना चाहता है, उसे कृष्ण से प्रारम्भ होने वाली गुरु-परम्परा में आध्यात्मिक गुरु की शरण लेनी चाहिए। *एवं परम्परा प्राप्तम् इमं राजर्षयो विदु: ।* गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत प्रामाणिक गुरु को स्वीकार किये बिना मनुष्य भक्ति का असली प्रयोजन नहीं जान सकता। अत: मनुष्य को प्रामाणिक गुरु की शरण स्वीकार करनी होगी और उनके निर्देशन में चलना होगा। शुद्ध भक्त का पहला कार्य यह है कि वह अपने गुरु को तुष्ट करे, जिसका एक मात्र कार्य कृष्णभावनामृत का प्रसार करना है। *यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसाद:*—यदि गुरु को तुष्ट कर लिया जाए, तो कृष्ण स्वत: तुष्ट हो जाते हैं। यही भक्ति की सफलता है। *आनुकूल्येन* शब्द का यही अर्थ है—'भगवान् की अनुकूल भक्ति।' शुद्ध भक्त के लिए भगवान् की सेवा के अतिरिक्त और कोई योजना नहीं होती। उसे भौतिक कार्यों में सफलता पाने में कोई रुचि नहीं होती। उसे केवल भक्ति की प्रगति में सफलता चाहिए। भक्त के लिए अन्य किसी की या देवता की पूजा सम्भव नहीं हो सकती। शुद्ध भक्त इस तरह की छद्म भक्ति में अपने आपको नहीं लगाता। वह तो एकमात्र कृष्ण को तुष्ट करने में रुचि लेता है। यदि कोई कृष्ण की तुष्टि के लिए जीवित रहता है, तो इस से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि वह किस आश्रम में स्थित है। उसका एक मात्र कार्य कृष्ण को तुष्ट करना होना चाहिए। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के कार्यों में यह विधि पूरी तरह से प्रकट है। यह सिद्ध करके दिखला दिया गया है कि सारा विश्व भक्ति को सफलतापूर्वक स्वीकार कर सकता है। बस, मनुष्य को केवल कृष्ण के प्रतिनिधि के आदेशों का पालन करना होगा।

অন্য-বাঞ্ছা, অন্য-পূজা ছাড়ি' 'জ্ঞান', 'কর্ম' ।
আনুকূল্যে সর্বেন্দ্রিয়ে কৃষ্ণানুশীলন ॥ ১৬৮॥

अन्य-वाञ्छा, अन्य-पूजा छाड़ि' 'ज्ञान', 'कर्म' ।
आनुकूल्ये सर्वेन्द्रिये कृष्णानुशीलन ॥ १६८॥

अन्य-वाञ्छा—अन्य कामनाएँ; **अन्य-पूजा**—अन्य प्रकार की पूजा; **छाड़ि'**—त्यागकर; **ज्ञान**—भौतिक ज्ञान; **कर्म**—भौतिक कर्म; **आनुकूल्ये**—अनुकूल रूप में; **सर्व-इन्द्रिये**—सभी इन्द्रियों से; **कृष्ण-अनुशीलन**—कृष्ण चेतना का अनुशीलन।

अनुवाद

"शुद्ध भक्त को कृष्ण की सेवा करने के अतिरिक्त अन्य कोई कामना नहीं करनी चाहिए। उसे न तो देवताओं की, न ही संसारी व्यक्तियों की पूजा करनी चाहिए। उसे कृष्णभावनामृत से रहित किसी कृत्रिम ज्ञान का अनुशीलन नहीं करना चाहिए और कृष्णभावानाभावित कार्यों के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य में नहीं लगना चाहिए। उसे अपनी सारी विशुद्ध इन्द्रियाँ भगवान् की सेवा में लगानी चाहिए। कृष्णभावनाभावित कार्यों को अनुकूल रीति से सम्पन्न करने की यही विधि है।

এই 'শুদ্ধ-ভক্তি'—ইহা হৈতে 'প্রেমা' হয় ।
পঞ্চরাত্রে, ভাগবতে এই লক্ষণ কয় ॥ ১৬৯॥

एइ 'शुद्ध-भक्ति'—इहा हैते 'प्रेमा' हय ।
पञ्चरात्रे, भागवते एइ लक्षण कय ॥ १६९॥

एइ—यह; **शुद्ध-भक्ति**—शुद्ध भक्ति; **इहा हैते**—जिससे; **प्रेमा**—कृष्ण का शुद्ध प्रेम; **हय**—होता है; **पञ्चरात्रे**—*पञ्चरात्र* नामक वैदिक साहित्य में; **भागवते**—*श्रीमद्भागवत* में भी; **एइ**—ये; **लक्षण**—लक्षण; **कय**—वर्णित हैं।

अनुवाद

"ये कार्य शुद्ध भक्ति कहलाते हैं। जो व्यक्ति ऐसी शुद्ध भक्ति करता है, वह उचित समय आने पर कृष्ण के प्रति अपना मूल प्रेम विकसित कर लेता है। पंचरात्र तथा श्रीमद्भागवत जैसे वैदिक ग्रन्थों में इन लक्षणों का वर्णन हुआ है।

तात्पर्य

मनुष्य को शुद्ध भक्त गुरु के निर्देशन के अन्तर्गत तथा पंचरात्र एवं भागवत पद्धतियों में दिये हुए वैदिक निर्देशों के अनुसार भक्ति विकसित करनी चाहिए। पंचरात्र पद्धति में अर्चाविग्रह की पूजा की विधियाँ आती हैं और भागवत पद्धति में *श्रीमद्भागवत* के प्रवचन तथा रुचि रखने वाले लोगों के साथ दर्शन की चर्चा द्वारा कृष्णभावनामृत के दर्शन का प्रसार करना सम्मिलित है। विचार-विमर्श द्वारा पंचरात्र तथा भागवत पद्धतियों में रुचि तथा ज्ञान उत्पन्न किया जा सकता है।

सर्वोपाधि-विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम् ।
हृषीकेण हृषीकेश-सेवनं भक्तिरुच्यते ॥ १७० ॥

सर्वोपाधि-विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम् ।
हृषीकेण हृषीकेश-सेवनं भक्तिरुच्यते ॥ १७० ॥

सर्व-उपाधि-विनिर्मुक्तम्—सभी प्रकार की भौतिक उपाधियों से रहित अथवा भगवत् सेवा के अतिरिक्त सभी इच्छाओं से रहित; **तत्-परत्वेन**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा के एकमात्र लक्ष्य द्वारा; **निर्मलम्**—शुष्क दार्शनिक अनुसंधान अथवा सकाम कर्म से अप्रभावित; **हृषीकेण**—सभी उपाधियों से रहित शुद्ध इन्द्रियों से; **हृषीक-ईश**—इन्द्रियों के स्वामी की; **सेवनम्**—इन्द्रिय तुष्टि के लिए सेवा; **भक्तिः**—भक्ति; **उच्यते**—कही जाती है।

अनुवाद

'"भक्ति का अर्थ है समस्त इन्द्रियों के स्वामी, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा में अपनी सारी इन्द्रियों को लगाना। जब आत्मा भगवान् की सेवा करता है, तो उसके दो गौण प्रभाव होते हैं। मनुष्य सारी भौतिक उपाधियों से मुक्त हो जाता है और भगवान् की सेवा में लगे रहने मात्र से उसकी इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाती हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक नारद पंचरात्र से उद्धृत है और *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.१.१२) में पाया जाता है।

मदगुण-श्रुति-मात्रेण मयि सर्व-गुहाशये ।
मनो-गतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥ १७१ ॥

मद्गुण-श्रुति-मात्रेण मयि सर्व-गुहाशये ।
मनो-गतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥ १७१ ॥

मत्—मेरे; **गुण**—गुणों के; **श्रुति-मात्रेण**—श्रवण मात्र से; **मयि**—मुझे; **सर्व-गुहा**—सभी हृदयों में; **आशये**—मैं जो स्थित हूँ; **मनः-गतिः**—मन की गति; **अविच्छिन्ना**—अबाधित; **यथा**—जैसे; **गङ्गा-अम्भसः**—गंगा का जल; **अम्बुधौ**—समुद्र को।

अनुवाद

"'जिस तरह गंगा का स्वर्गीय जल अबाध गति से समुद्र में जाकर मिल जाता है, उसी तरह जब मेरे भक्त मेरा श्रवण मात्र करते हैं, तो उनके मन मेरे पास आते हैं। मैं सबके हृदयों में वास करता हूँ।

तात्पर्य

यह श्लोक तथा अगले तीन श्लोक *श्रीमद्भागवत* (३.२९.११-१४) से उद्धृत हैं, जिन्हें कपिलदेव के रूप में कृष्ण ने कहा था।

लक्षणं भक्ति-योगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥ १७२ ॥
लक्षणं भक्ति-योगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥ १७२ ॥

लक्षणम्—लक्षण; **भक्ति-योगस्य**—भक्ति योग का; **निर्गुणस्य**—प्रकृति के तीन गुणों से परे; **हि**—अवश्य; **उदाहृतम्**—कहा गया है; **अहैतुकी**—अकारण; **अव्यवहिता**—अवरोध रहित; **या**—जो; **भक्तिः**—भक्ति; **पुरुष-उत्तमे**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को।

अनुवाद

"'ये पुरुषोत्तम अर्थात् पम भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति के लक्षण हैं; यह अहैतुकी होती है और किसी तरह रोके नहीं रुकती।

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥ १७३ ॥
सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥ १७३ ॥

सालोक्य—मेरे लोक में निवास; **सार्ष्टि**—मेरे जैसा ऐश्वर्य होना; **सामीप्य**—मेरा प्रत्यक्ष संग करना; **सारूप्य**—मेरे जैसा रूप होना; **एकत्वम्**—मुझसे एकाकार होना; **अपि**—भी; **उत**—अथवा; **दीयमानम्**—दिये जाने पर; **न**—नहीं; **गृह्णन्ति**—स्वीकार करता; **विना**—बिना; **मत्-सेवनम्**—मेरी सेवा के; **जनाः**—भक्त गण।

अनुवाद

"'मेरे भक्त मेरी सेवा करने की तुलना में सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य तथा सारूप्य इन मुक्तियों को मेरे देने पर भी स्वीकार नहीं करते।

स एव भक्ति-योगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः ।
येनातिव्रज्य त्रि-गुणं मद्भावायोपपद्यते ॥ १७४॥

स एव भक्ति-योगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः ।
येनातिव्रज्य त्रि-गुणं मद्भावायोपपद्यते ॥ १७४॥

सः—वह (ऊपर सूचित लक्षणों से युक्त); **एव**—निस्सन्देह; **भक्ति-योग-आख्यः**—भक्तियोग नामक; **आत्यन्तिकः**—जीवन का चरम लक्ष्य; **उदाहृतः**—वर्णन किया हुआ; **येन**—जिससे; **अतिव्रज्य**—पार कर जाता है; **त्रि-गुणम्**—भौतिक प्रकृति के तीन गुण; **मत्-भावाय**—मेरे साथ सीधे सम्पर्क के लिए (परम भगवान् और उनकी प्रकृति); **उपपद्यते**—योग्य बन जाता है।

अनुवाद

"'ऊपर बतलाया गया भक्तियोग जीवन का चरम लक्ष्य है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भक्ति करने से मनुष्य भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों को पार कर जाता है और प्रत्यक्ष भक्ति के स्तर पर आध्यात्मिक पद को प्राप्त करता है।'

ভুক্তি-মুক্তি আদি-বাঞ্ছা যদি মনে হয় ।
সাধন করিলে প্রেম উৎপন্ন না হয় ॥ ১৭৫॥

भुक्ति-मुक्ति आदि-वाञ्छा यदि मने हय ।
साधन करिले प्रेम उत्पन्न ना हय ॥ १७५॥

भुक्ति—भौतिक भोग; **मुक्ति**—भौतिक बन्धन से मुक्त होना, मुक्ति; **आदि**—आदि; **वाञ्छा**—इच्छाएँ; **यदि**—यदि; **मने**—मन में; **हय**—हों; **साधन करिले**—नियमों के अनुसार

भक्ति करने पर भी; **प्रेम**—कृष्ण का वास्तविक प्रेम; **उत्पन्न**—उत्पन्न; **ना**—नहीं; **हय**—होता है।

अनुवाद

"यदि कोई भौतिक भोग या भौतिक मुक्ति की कामना से पीड़ित है, तो वह शुद्ध प्रेमाभक्ति के स्तर तक ऊपर नहीं उठ सकता, भले ही वह साधारण विधि-विधानों के अनुसार ऊपरी तौर पर भक्ति क्यों न कर रहा हो।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि जो व्यक्ति मन में अच्छे कार्य का फल भोगने अथवा संसार द्वारा सताये जाने के कारण भवबन्धन से छूटने की इच्छा रखता है, वह कभी-भी भक्ति रस को प्राप्त नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में, भक्ति करते समय भौतिक लाभ की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। यहाँ तक कि ६४ विधिविधानों का पालन करते हुए भी कलुषित हृदय होने पर उसे शुद्ध भक्ति नहीं मिल पाती।

भुक्ति-मुक्ति-स्पृहा यावज्जिशाची हृदि वर्तते ।
तावद्भक्ति-सुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत् ॥ १७६॥

भुक्ति-मुक्ति-स्पृहा यावत्पिशाची हृदि वर्तते ।
तावद्भक्ति-सुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत् ॥ १७६ ॥

भुक्ति—भौतिक भोग के लिए; **मुक्ति**—भौतिक आस्तित्व से मुक्ति की; **स्पृहा**—इच्छाएँ; **यावत्**—जब तक; **पिशाची**—डायनें; **हृदि**—हृदय में; **वर्तते**—रहती हैं; **तावत्**—तब तक; **भक्ति**—भक्ति का; **सुखस्य**—सुख का; **अत्र**—यहाँ; **कथम्**—कैसे; **अभ्युदयः**—उत्थान; **भवेत्**—हो सकता है।

अनुवाद

"'भौतिक जगत् को भोगने की इच्छा तथा भौतिक बन्धन से मुक्त होने की इच्छा—ये दो पिशाचिनियाँ हैं, जो भूतप्रेतों की तरह मँडराती रहती हैं। जब तक ये पिशाचिनियाँ हृदय में रहती हैं, तब तक भला दिव्य आनन्द का अनुभव कैसे हो सकता है? जब तक ये दोनों डायनें हृदय में

रहती हैं, तब तक भक्ति का दिव्य आनन्द अनुभव करने की सम्भावना नहीं रहती।'

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृतसिंधु* (१.२.२२) में पाया जाता है।

साधन-भक्ति हैते हय 'रति'र उदय ।
रति गाढ़ हैले तार 'प्रेम' नाम कय ॥ १७७॥

साधन-भक्ति हैते हय 'रति'र उदय ।
रति गाढ़ हैले तार 'प्रेम' नाम कय ॥ १७७॥

साधन-भक्ति—साधना भक्ति; **हैते**—से; **हय**—होता है; **रतिर**—आसक्ति की; **उदय**—जागृति; **रति**—ऐसी आसक्ति; **गाढ़ हैले**—प्रगाढ़ होकर; **तार**—इसका; **प्रेम**—भगवत्प्रेम; **नाम**—नाम; **कय**—कहा जाता है।

अनुवाद

"नियमित भक्ति करते रहने से मनुष्य क्रमशः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति अनुरक्त होता है। जब यह अनुरक्ति प्रगाढ़ हो जाती है, तब यही भगवत्प्रेम कहलाती है।

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु (१.२.२) से *साधन-भक्ति* के विषय में निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होती है :

कृति-साध्या भवेत् साध्य-भावा सा साधनाभिधा।
नित्य-सिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता॥

श्रवण-कीर्तन से प्रारम्भ होने वाली भक्ति की प्रक्रिया *साधन-भक्ति* कहलाती है। इसमें वे विधान सम्मिलित हैं, जिनका उद्देश्य मनुष्य को भक्ति की ओर उन्मुख करना होता है। भक्ति प्रत्येक के हृदय में सदैव सुप्त रहती है और निरपराध भाव से भगवन्नाम का कीर्तन करने से मनुष्य की मूल सुप्त कृष्ण चेतना जाग्रत हो उठती है। कृष्ण चेतना की जागृति ही साधन-भक्ति का प्रारम्भ है। इसके कई अंग हो सकते हैं—यथा श्रद्धा, भक्तों की संगति, गुरु द्वारा दीक्षा, गुरु के आदेशानुसार भक्तिमय सेवा में प्रवृत्त होना; भक्ति में स्थिरता तथा

भक्ति के लिए रुचि का उदय होना। इस तरह मनुष्य कृष्ण तथा उनकी सेवा में अनुरक्त हो सकता है और यही अनुरक्ति प्रगाढ़ होने पर कृष्ण-प्रेम बन जाती है। *रति* शब्द की व्याख्या *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.३.४१) में इस प्रकार की गई है :

व्यक्तं मसृणतेवान्तर्लक्ष्यते रति लक्षणम्।
मुमुक्षुप्रभृतीनां चेद् भवेदेषा रतिर्न हि॥

"जब हृदय की कोमलता प्रकट हो, तो उसे *रति* कहते हैं। किन्तु जो लोग भवबन्धन से छूटने में रुचि रखते हैं, वे यह कोमलता प्रकट नहीं करते।" यह रति अर्थात् अनुरक्ति भौतिक आसक्ति जैसी नहीं है। जब मनुष्य भौतिक कल्मष से छूट जाता है, तब कृष्ण-सेवा के लिए जो अनुरक्ति जाग्रत होती है, वही *रति* कहलाती है। भौतिक जगत् में भौतिक भोग के लिए आसक्ति होती है, किन्तु यह रति नहीं है। दिव्य रति केवल आध्यात्मिक स्तर पर ही जाग्रत हो सकती है। *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.४१) में *कृष्ण-प्रेम* का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

सम्यङ्मसृणित स्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥

"जब हृदय पूरी तरह कोमल हो जाता है और सारी भौतिक इच्छाओं से रहित हो जाता है तथा जब मनुष्य के भाव अत्यन्त प्रखर हो उठते हैं, तब वह कृष्ण के प्रति अत्यधिक अनुरक्त हो जाता है। ऐसा शुद्ध भाव शुद्ध प्रेम कहलाता है।"

प्रेम वृद्धि-क्रमे नाम——स्नेह, मान, प्रणय ।
राग, अनुराग, भाव, महाभाव हय ॥ १७८॥

प्रेम वृद्धि-क्रमे नाम——स्नेह, मान, प्रणय ।
राग, अनुराग, भाव, महाभाव हय ॥ १७८॥

प्रेम—भगवत्-प्रेम; **वृद्धि-क्रमे**—क्रमिक वृद्धि में; **नाम**—नामक; **स्नेह**—स्नेह; **मान**—मान; **प्रणय**—प्रेम; **राग**—आसक्ति; **अनुराग**—प्रगाढ़ अनुराग; **भाव**—भाव; **महा-भाव**—महाभाव; **हय**—है।

अनुवाद

"प्रेम के आधारभूत पक्ष धीरे धीरे बढ़कर स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव तथा महाभाव बन जाते हैं।

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु (३.२.८४) में *स्नेह* का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

सान्द्रश्चित्त द्रवं कुर्वन् प्रेमा 'स्नेह' इतीर्यते।
क्षणिकस्यापि नेह स्याद् विश्लेषस्य सहिष्णुता॥

"प्रेम का वह पक्ष जिसमें प्रेमी के लिए हृदय गाढ़ रूप से द्रवित हो उठे, स्नेह कहलाता है। ऐसे स्नेह का लक्षण यह है कि प्रेमी प्रेमिका के संग के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता।" *मान* का वर्णन *मध्यलीला* (२.६६) में मिलता है। इसी तरह *प्रणय* का भी वर्णन प्राप्त है। जहाँ तक *राग* का सम्बन्ध है, *भक्तिरसामृतसिन्धु* (३.२.८७) में कहा गया है :

स्नेह स रागो येन स्यात् सुखं दुःखमपि स्फुटम्।
तत्सम्बन्ध लवेऽप्यत्र प्रीतिः प्राणव्ययैरपि॥

"जिस अवस्था में प्रियतमा के प्रति स्नेह के कारण दुःख सुख में बदल जाता है, वह *राग* कहलाता है। जब ऐसा राग कृष्ण के प्रति होता है, तब मनुष्य अपने प्रियतम कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए अपना जीवन भी दे सकता है।" *अनुराग, भाव* तथा *महाभाव* का वर्णन मध्यलीला (६.१३) में पाया जाता है। उस श्लोक के तात्पर्य में *अधिरूढ़-महाभाव* की व्याख्या मिलती है।"

যৈছে বীজ, ইক্ষু, রস, গুড়, খণ্ড-সার ।
শর্করা, সিতা, মিছরি, উত্তম-মিছরি আর ॥১৭৯॥

য়ৈছে বীজ, ইক্ষু, রস, গুড়, খণ্ড-সার ।
শর্করা, সিতা, মিছরি, উত্তম-মিছরি আর ॥ ১৭৯॥

য়ৈছে—जैसे; **बीज**—बीज; **इक्षु**—गन्ने का पौधा, ईख; **रस**—गन्ने का रस; **गुड़**—गुड़; **खण्ड-सार**—चीनी; **शर्करा**—मिश्री; **सिता**—कठोर मिश्री; **मिछरि**—चूसने की मिश्री; **उत्तम-मिछरि**—मिठाई; **आर**—और।

अनुवाद

"प्रेम के क्रमिक विकास की तुलना चीनी की विभिन्न अवस्थाओं से की जा सकती है। पहले गन्ने का बीज, फिर गन्ना, तब गन्ने का रस होता है। जब इस रस को उबाला जाता है, तो प्रवाही शीरा बनता है, जो ठोस बनकर गुड़, फिर चीनी, फिर मिश्री, कठोर मिश्री तथा चूसने की मिश्री प्रदान करता है।

এই সব কৃষ্ণ-ভক্তি-রসের স্থায়িভাব ।
স্থায়িভাবে মিলে যদি বিভাব, অনুভাব ॥ ১৮০॥

এइ সব কৃষ্ণ-ভক্তি-রসের স্থায়িভাব ।
স্থায়িভাবে মিলে যদি বিভাব, অনুভাব ॥ ১৮০॥

এइ সব—ये सब; **কৃষ্ণ-ভক্তি**—कृष्ण भक्ति के; **রসের**—रसों के; **স্থায়ি-ভাব**—स्थायी भाव; **স্থায়ি-ভাবে**—इस स्थायी भाव में; **মিলে**—मिलता है; **যদি**—यदि; **বিভাব**—विशेष भाव; **অনুভাব**—अनुभाव।

अनुवाद

"ये सारी अवस्थाएँ मिलकर स्थायी भाव—अर्थात् भक्ति में सतत भगवत्प्रेम—कहलाती हैं। इन अवस्थाओं के अतिरिक्त विभाव तथा अनुभाव भी होते हैं।

तात्पर्य

कृष्ण के प्रति राग कभी घटता नहीं। विभिन्न अवस्थाएँ प्राप्त करने पर यह बढ़ता जाता है। ये सारी अवस्थाएँ *स्थायी* भाव कहलाती हैं। भक्ति के नौ प्रकार हैं—*श्रवणं, कीर्तनं, विष्णोः स्मरणं, पादसेवनम्, अर्चनं, वन्दनं, दास्यं, सख्यमात्मनिवेदनम्।* जब सतत भगवत्प्रेम (स्थायी भाव) भक्ति की विधियों में मिला दिया जाता है, तो उसे *विभाव, अनुभाव, सात्त्विक* और *व्यभिचारी* कहते हैं। इस तरह भक्त को अनेक प्रकार का दिव्य आनन्द प्राप्त होता है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने *अमृतप्रवाह-भाष्य* में लिखा है कि *अनुभाव* की तेरह कोटियाँ हो सकती हैं (१) नृत्य, (२) जमीन पर लोटना, (३) गाना, (४) चिल्लाना, (५) कूदना, (६) उच्च स्वर से शब्द करना, (७) जम्हाई

लेना, (८) दीर्घश्वास लेना, (९) जनमत की परवाह न करना, (१०) लार गिरना, (११) अट्टहास, (१२) अस्थिरता तथा (१३) हिचकियाँ। ये अनुभाव के लक्षण हैं। इस तरह दिव्य रसानुभूति विभिन्न स्तरों पर होती है। इसी प्रकार गोस्वामियों ने अभिव्यक्ति के अनेक अन्य रूपों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। रूप गोस्वामी ने *भक्तिरसामृतसिन्धु* में प्रत्येक लक्षण को अलग अलग नाम दिया है।

সাত্ত্বিক-ব্যভিচারি-ভাবের মিলনে ।
কৃষ্ণ-ভক্তি-রস হয় অমৃত আস্বাদনে ॥ ১৮১ ॥

সাত্ত্বিক-ব্যভিচারি-ভাবের মিলনে ।
কৃষ্ণ-ভক্তি-রস হয় অমৃত আস্বাদনে ॥ ১৮১ ॥

সাত্ত্বিক-ব্যভিচারি-ভাবের—स्थायी भाव के साथ सात्त्विक और व्यभिचारी; **মিলনে**—मिलने से; **কৃষ্ণ-ভক্তি-রস**—कृष्ण भक्ति का दिव्य रस; **হয়**—हो जाता है; **অমৃত**—अमृतमय; **আস্বাদনে**—आस्वादन में।

अनुवाद

"जब सात्त्विक तथा व्यभिचारी भावों के लक्षणों को उच्चस्तरीय प्रेमभाव से मिला दिया जाता है, तब भक्त नाना प्रकार के अमृतमय स्वादों में कृष्ण-प्रेम के दिव्य आनन्द का आस्वादन करता है।

যৈছে দধি, সিতা, ঘৃত, মরীচ, কর্পূর ।
মিলনে, 'রসালা' হয় অমৃত মধুর ॥ ১৮২ ॥

যৈছে দধি, সিতা, ঘৃত, মরীচ, কর্পূর ।
মিলনে, 'রসালা' হয় অমৃত মধুর ॥ ১৮২ ॥

যৈছে—जैसे; **দধি**—दही; **সিতা**—मिश्री; **ঘৃত**—घी; **মরীচ**—काली मिर्च; **কর্পূর**—कपूर; **মিলনে**—इकट्ठे मिलाने से; **রসালা**—बहुत स्वादिष्ट; **হয়**—हो जाते हैं; **অমৃত**—अमृतमय; **মধুর**—और मीठे।

अनुवाद

"इनके स्वाद दही, मिश्री, घी, काली मिर्च तथा कपूर के मिश्रण के स्वाद के तुल्य हैं और मधुर अमृत की भाँति स्वादिष्ट होते हैं।

ভক্ত-ভেদে রতি-ভেদ পঞ্চ পরকার ।
শান্ত-রতি, দাস্য-রতি, সখ্য-রতি আর ॥ ১৮৩॥
বাৎসল্য-রতি, মধুর-রতি,—এই পঞ্চ বিভেদ ।
রতি-ভেদে কৃষ্ণ-ভক্তি-রসে পঞ্চ ভেদ ॥ ১৮৪॥

भक्त-भेदे रति-भेद पञ्च परकार ।
शान्त-रति, दास्य-रति, सख्य-रति आर ॥ १८३॥
वात्सल्य-रति, मधुर-रति,—ए पञ्च विभेद ।
रति-भेदे कृष्ण-भक्ति-रसे पञ्च भेद ॥ १८४॥

भक्त-भेदे—भक्तों की श्रेणियों के अनुसार; **रति-भेद**—विभिन्न आसक्तियाँ; **पञ्च परकार**—पाँच प्रकार; **शान्ति-रति**—शान्त रति, तटस्थ भाव; **दास्य-रति**—दास्य रति, दासता भाव; **सख्य-रति**—सख्य रति, मित्र भाव; **आर**—और; **वात्सल्य-रति**—वात्सल्य रति, स्नेह भाव; **मधुर-रति**—माधुर्य प्रेम भाव; **एइ**—इन्हीं; **पञ्च**—पाँच; **विभेद**—विभाग; **रति-भेदे**—विभिन्न स्तरों पर आसक्ति से; **कृष्ण-भक्ति-रसे**—कृष्ण भक्ति से प्राप्त रसों में; **पञ्च**—पाँच; **भेद**—प्रकार।

अनुवाद

"भक्त के अनुसार रति पाँच प्रकार की होती है—शान्त रति, दास्य रति, सख्य रति, वात्सल्य रति तथा मधुर रति। ये पाँचों प्रकार की रति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति भक्त की विभिन्न अनुरक्तियों से उत्पन्न होती हैं। भक्ति से प्राप्त होने वाले दिव्य रस भी पाँच प्रकार के होते हैं।

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु (२.५.१६-१८) में *शान्त रति* का वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है :

मानसे निर्विकल्पत्वं शम इत्यभिधीयते।

"जब मनुष्य सारे संशयों तथा भौतिक आसक्तियों से पूर्णतया मुक्त हो जाता है, तब उसे शान्त अवस्था प्राप्त होती है।"

विहाय विषयोन्मुख्यं निजानन्द स्थितिर्यतः।
आत्मनः कथ्यते सोऽत्र स्वभावः शम इत्यसौ॥
प्रायः शमप्रधानानां ममता गन्ध वर्जिता।
परमात्मतया कृष्णे जाता शान्त रतिर्मता॥

"कृष्ण की शान्त-रति की अनुभूति निर्विशेषवाद तथा साकारवाद की धारणा के मध्य तटस्थ अवस्था में है। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य भगवान् के साकार रूप के प्रति प्रगाढ़तापूर्वक अनुरक्त नहीं रहता। भगवान् की महानता के लिए सराहना का भाव होना शान्त-रति है। यह अनुरक्ति साकार रूप से नहीं अपितु निर्विशेष पहलू से होती है। सामान्यतया इस अवस्था में मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के परमात्मा रूप से अनुरक्त रहता है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारुढानि मायया॥

"हे अर्जुन, भगवान् सबके हृदय में स्थित हैं और उन सभी जीवों के आवागमन को नियन्त्रित करते हैं, जो मानो माया रूपी यंत्र पर आरूढ़ हैं।" (*भगवद्गीता* १८.६१) *भगवद्गीता* के इस कथन के आधार पर हम समझ सकते हैं कि *शान्त रस* में भक्त सर्वत्र भगवान् का प्रतिनिधित्व देखता है।

भक्तिरसामृतसिन्धु (२.५.२७) में *दास्य रति* की व्याख्या इस प्रकार मिलती है :

स्वस्माद्भवन्ति ये न्यूनास्तेऽनुग्राह्या हरेर्मताः।
आराध्यत्वात्मिका तेषां रतिः प्रीतिरितीरिता।
तत्रासक्तिकृदन्यत्र प्रीतिसंहारिणी ह्यसौ॥

जब भगवान् के अन्तर्यामी रूप को समझ लिया जाता है और महान् भक्त अपनी अधीनता को समझ लेता है, तो वह न केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण ग्रहण करता है, अपितु वह अपनी अधीन अवस्था के कारण वह सेवा करना चाहता है और इस तरह भगवान् की कृपा का पात्र बनना चाहता है। शान्त रति में भक्त भगवान् की सेवा करने के लिए अधिक उत्सुक नहीं रहता, किन्तु दास्य रति में वह स्वेच्छा से सेवा करना चाहता है। इस मनोवृत्ति के कारण दास्य रति में भक्त शान्त रति की अपेक्षा भगवान् की अधिक पूर्णता से अनुभूति करता है। वह भगवान् को पूजनीय व्यक्ति मानता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि भगवान् के प्रति उसकी अनुरक्ति बढ़ती जाती है। इस प्रकार दास्य रति की विशेषता है— *भक्तिः परेशानुभवोविरक्तिरन्यत्र च।* (*श्रीमद्भागवत* ११.२.४२) दूसरे शब्दों में, दास्य रति में भक्त भगवान् की सेवा करने में अनुरक्त रहता है

और वह भौतिक कार्यकलापों से विरक्त रहता है। शान्त रति न तो भौतिक होती है न आध्यात्मिक, किन्तु दास्य रति अवश्य आध्यात्मिक स्तर पर होती है। इस आध्यात्मिक अवस्था में भौतिक वस्तुओं के लिए कोई आसक्ति नहीं रहती (*विरक्तिरन्यत्र च*)। दास्य रति में भक्त को कृष्ण की सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की आसक्ति नहीं रहती।

भक्तिरसामृतसिन्धु (२.५.३०) में *सख्य रति* का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

ये स्युस्तुल्या मुकुन्दस्य ते सखायः सतां मताः।
साम्याद् विश्रम्भरूपैषां रतिः सख्यमिहोच्यते॥

उन्नत भक्तों तथा विद्वानों के मतानुसार सख्य रति में भक्त अपने आपको पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के समकक्ष अनुभव करता है। यह सख्य भाव है। भगवान् के साथ सख्य भाव होने के कारण भक्त न केवल भौतिक आसक्ति से मुक्त हो जाता है, अपितु वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ समानता का व्यवहार करने में विश्वास करता है। यह *सख्यरति* कहलाती है। सख्य रति में भक्त इतना ऊपर उठ जाता है कि वह भगवान् को समान स्तर पर मानकर उनसे हास-परिहास करता है। यद्यपि जीव कभी भी भगवान् के समान नहीं होता, फिर भी सख्य रति में भक्त अपने आपको पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के समान मानता है और इसके लिए वह अपने आपको किसी भी प्रकार से दोषी नहीं समझता। आमतौर पर अपने आपको भगवान् के समान मानना अपराध है। मायावादी, उदाहरण के तौर पर, अपने आपको भगवान् के तुल्य मानते हैं, किन्तु ऐसे विचारों से दुःख ही मिलता है, क्योंकि वे भौतिक हैं। किन्तु सख्य रति शुद्ध भक्त द्वारा मन में अनुभव किया गया भाव है और भक्त इसी भाव में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से नित्य जुड़ा होता है।

भक्तिरसामृतसिन्धु (२.५.३३) में *वात्सल्य रति* का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

गुरवो ये हरेरस्य ते पूज्या इति विश्रुताः
अनुग्रहमयी तेषां रतिर्वात्सल्यमुच्यते
इदं लालन भव्याशीश्चिबुकस्पर्शनादिकृत्॥

वात्सल्य रति में स्थित जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के बालस्वरूप का

ध्यान करता है। शिशु-स्वरूप में भगवान् की रक्षा भक्त द्वारा की जानी होती है और ऐसी स्थिति में भक्त ऐसी स्थिति ग्रहण करता है, जिसमें वह भगवान् द्वारा पूजनीय होता है। माता-पिता के प्रेम का यह भाव *वात्सल्य रति* कहलाता है। जब भक्त इस अवस्था में स्थित होता है, तब वह भगवान् का पालन-पोषण पुत्र रूप में करना चाहता है और सर्वथा भगवान् के सौभाग्य की कामना करता है। वह भगवान् के पाँव तथा सिर छूकर उन्हें आशीर्वाद देता है।

मधुर-रति का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

मिथो हरेर्मृगाक्ष्याश्च सम्भोगस्यादिकारणम्।
मधुरापर-पर्याया प्रियताख्योदिता रतिः।
अस्यां कटाक्ष-भ्रू-क्षेप-प्रिय-वाणी स्मितादयः॥

मधुर रति की अनुभूति जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा व्रजभूमि की तरुणी गोपिकाओं के बीच होती है, निरन्तर आठ प्रकार की स्मृतियों में बनी रहती है। माधुर्य प्रेम के कारण होने वाले इस घनिष्ठ सम्बन्ध में भौहें मटकाना, बाँकी चितवन, मधुर शब्द तथा परिहास चलता है।

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर-रस नाम ।
कृष्ण-भक्ति-रस-मध्ये ए पञ्च प्रधान ॥ १८५॥

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर-रस नाम ।
कृष्ण-भक्ति-रस-मध्ये ए पञ्च प्रधान ॥ १८५॥

शान्त—तटस्थता; **दास्य**—दासता; **सख्य**—मित्रता; **वात्सल्य**—माता पिता का स्नेह; **मधुर-रस**—माधुर्य प्रेम; **नाम**—विभिन्न नाम; **कृष्ण-भक्ति**—कृष्ण भक्ति के; **रस**—रस; **मध्ये**—के मध्य; **ए**—ये; **पञ्च**—पाँच; **प्रधान**—मुख्य।

अनुवाद

"भगवान् के साथ अनुभव किये जाने वाले प्रमुख रस पाँच हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर।

हास्योऽद्भुतस्तथा वीरः करुणो रौद्र इत्यपि ।
भयानकः स-बीभत्स इति गौणश्च सप्तधा ॥ १८६॥

हास्योऽद्भुतस्तथा वीरः करुणो रौद्र इत्यपि ।
भयानकः स-बीभत्स इति गौणश्च सप्तधा ॥ १८६ ॥

हास्यः—हास्य; **अद्भुतः**—अद्भुत; **तथा**—तथा; **वीरः**—वीर; **करुणः**—करुण; **रौद्रः**—रौद्र; **इति**—इस प्रकार; **अपि**—भी; **भयानकः**—भयानक; **सः**—के साथ; **बीभत्सः**—बीभत्स; **इति**—इस प्रकार; **गौणः**—गौण; **च**—भी; **सप्तधा**—सात प्रकार।

अनुवाद

"पाँच प्रत्यक्ष रसों के अतिरिक्त सात अप्रत्यक्ष या गौण रस होते हैं, जिन्हें हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक तथा बीभत्स नाम से जाना जाता है।

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (२.५.११६) में पाया जाता है।

হাস্য, অদ্ভুত, বীর, করুণ, রৌদ্র, বীভৎস, ভয় ।
পঞ্চ-বিধ-ভক্তে গৌণ সপ্ত-রস হয় ॥ ১৮৭ ॥

हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, बीभत्स, भय ।
पञ्च-विध-भक्ते गौण सप्त-रस हय ॥ १८७ ॥

हास्य—हास्य; **अद्भुत**—अद्भुत; **वीर**—वीर; **करुण**—करुण, सहानुभूति; **रौद्र**—क्रोध; **बीभत्स**—बीभत्स; **भय**—भय; **पञ्च-विध-भक्ते**—पाँच प्रकार के भक्तों में; **गौण**—गौण; **सप्त-रस**—सात रस; **हय**—हैं।

अनुवाद

"पाँच प्रत्यक्ष रसों के अतिरिक्त सात अप्रत्यक्ष रस हैं, जिन्हें हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, बीभत्स तथा भयानक कहा जाता है।

तात्पर्य

भक्तिरसामृतसिन्धु (३.१.४-६) में शान्त भक्ति रस का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः शमिनां स्वाद्यतां गतः ।
स्थायी शान्तिरतिर्धीरैः शान्तभक्तिरस स्मृतः ॥
प्रायः स्वसुखजातीयं सुखं स्यादत्र योगिनाम्
किन्त्वात्मसौख्यमघनं घनं त्विशमयं सुखम् ।

तत्रापीश स्वरूपानुभवस्यैवोरुहेतुता।
दासादि वन्मनोज्ञात्व लीलादेर न तथा मता॥

जब शान्त रति लगातार बनी रहे और आनन्द भाव से मिल जाय और जब भक्त को शान्त स्थिति का आस्वादन होने लगे, तो उसे *शान्तभक्तिरस* कहते हैं। शान्त भक्तिरस में भक्त सामान्यतया पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के निर्विशेष पहलू का आस्वादन करते हैं। चूँकि उनके दिव्य आनन्द का आस्वादन अधूरा रहता है, इसलिए यह *अघन* कहलाता है, जिसका अर्थ है, "जो गाढ़ा नहीं है वह।" सामान्य तथा औटाये दूध की तुलना की गई है। जब वही भक्त निर्विशेष से परे जाकर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदि रूप सच्चिदानन्द-विग्रह की सेवा का आस्वादन करता है, तब वह स्वाद *घन* (गाढ़ा) आनन्द कहलाता है। कभी-कभी शान्त रस में भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से मिलने के बाद दिव्य आनन्द का आस्वादन करता है, किन्तु दास्य रस में स्थित भक्त द्वारा अनुभव किये गये दिव्य आनन्द से इसकी तुलना नहीं की जा सकती, जिसमें वह भगवान् की सेवा करता है।

दास्य रस या *दास्य-भक्ति-रस* का वर्णन *भक्तिरसामृतसिन्धु* (३.२.३-४) में इस प्रकार हुआ है :

आत्मोचितैर्विभावाद्यैः प्रीतिरास्वादनीयताम्।
नीता चेतसि भक्तानां प्रीति भक्तिरसोमतः॥
अनुग्राह्यस्य दासत्वाल्लाल्या त्वादप्ययं द्विधा।
भिद्यते सम्भ्रमप्रीतो गौरव प्रीत इत्यपि॥

जब जीव अपनी इच्छानुसार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के लिए प्रेम उत्पन्न कर लेता है, तब प्रेम का यह शुभारम्भ *दास्यभक्ति रस* कहलाता है। दास्य-भक्ति-रस के दो विभाग किये जाते हैं—*सम्भ्रम-दास्य* और *गौरव-दास्य*। *सम्भ्रम दास्य* में भक्त भगवान् की सादर सेवा करता है, किन्तु अधिकतर उन्नत *गौरव दास्य* अवस्था में भक्त की सेवा भगवान् को सरंक्षण प्रदान करती है।

सख्य भक्तिरस का वर्णन *भक्तिरसामृतसिन्धु* (३.३.१) में इस प्रकार दिया गया है :

स्थायीभावो विभावाद्यैः सख्यम् आत्मोचितैर् इह।
नीतश्चित्ते सताम् पुष्टिमं रसः प्रेयानुदिर्यते॥

"मनुष्य की मूल चेतना के अनुसार उसमें आनन्द की भावना शाश्वत रूप में सख्य में विद्यमान रहती हुई प्रदर्शित हो सकती है। जब कृष्ण चेतना का यह स्तर परिपक्व होता है, तब उसे *प्रेयो-रस* या *सख्य-भक्ति-रस* कहते हैं।"

वात्सल्य-भक्ति-रस का वर्णन *भक्तिरसामृतसिन्धु* (३.४.१) में इस प्रकार मिलता है :

विभावाद्यैस्तु वात्सल्यं स्थायी पुष्टिं उपागतः।
एष वत्सलनामात्र प्रोक्तो भक्तिरसो बुद्यैः॥

"जब नित्य विद्यमान भगवत्प्रेम माता-पिता के प्रेम में परिणत हो जाता है और अनुरूप भावों से मिल जाता है, तो उस दिव्य अवस्था को विद्वान भक्त वात्सल्य-भक्ति-रस कहते हैं।"

मधुर-भक्ति-रस का वर्णन *भक्तिरसामृतसिन्धु* (३.५.१) में इस प्रकार हुआ है :

आत्मोचितैर्विभावाद्यैः पुष्टिं नीता सतांहृदि।
मधुराख्यो भवेद् भक्तिरसोऽसौ मधुरा रतिः॥

"यदि मनुष्य अपने में कृष्णभावना के सहज विकास के अनुसार हृदय में माधुर्य प्रेम की ओर आकृष्ट होता है, तो वह आकर्षण मधुर-रस कहलाता है।"

इसी तरह हास्य, अद्‌भुत, वीर, करुण, रौद्र, भय तथा बीभत्स इन सात गौण रसों की भी व्याख्या *भक्तिरसामृतसिन्धु* में की गई है। *हास्य-भक्ति-रस* की व्याख्या इस प्रकार हुई है (*भक्तिरसामृतसिन्धु* ४.१.६) :

वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः पुष्टिं हासरतिर्गता।
हास्यभक्ति रसोनाम बुधैरेष निगद्यते॥

"जब भक्ति के माध्यम से कृष्ण के प्रति हास्य अनुरक्ति उत्पन्न होती है, तब विद्वान लोग उसे हास्य-भक्ति-रस कहते हैं।

इसी प्रकार *अद्भुत-रस* का वर्णन *भक्तिरसामृतसिन्धु* (४.२.१) में हुआ है :

आत्मोचितैर्विभावाद्यैः स्वाद्यत्वं भक्त चेतसि।
सा विस्मयरतिर्नीताद्भुतो भक्ति रसो भवेत्॥

"जब आश्चर्य में किसी की सामान्य अनुरक्ति स्थिर हो जाती है, तो उसे अद्‌भुत-भक्ति-रस कहते हैं।"

इसी तरह *वीर भक्ति-रस* का वर्णन हुआ है (*भक्तिरसामृतसिन्धु* ४.३.१)

सैवोत्साहरतिः स्थायी विभावाद्यैर्निजोचितः
आनीयमाना स्वाद्यत्वं वीर भक्ति रसो भवेत्।
युद्धदान दया धर्मैश्चतुर्धावीर उच्यते।

"जब भक्त के हृदय में कृष्ण के प्रति अनुरक्ति युद्ध भाव, दान भाव या दया भाव से मिल जाती है, तो ऐसी भक्ति वीर-भक्ति-रस कहलाती है।"

करुण भक्ति-रस का वर्णन इस प्रकार हुआ है (*भक्तिरसामृतसिन्धु* ४.४.१)

आत्मोचितैर्विभावाद्यैर्नीता पुष्टिं सतां हृदि।
भवेच्छोकरतिर्भक्तिरसो हि करुणाभिदः॥

"जब किसी का भक्तिभाव तथा कृष्ण के प्रति आकर्षण शोक से मिल जाते हैं, तो वह करुण-भक्ति-रस कहलाता है।"

इसी तरह *रौद्र-भक्ति-रस* का भी वर्णन हुआ है (*भक्तिरसामृतसिन्धु* ४.५.१)

नीता क्रोध-रतिः पुष्टिं विभावाद्यैर्निजोचितैः।
हृदि भक्तजनस्यासौ रौद्रभक्ति रसो भवेत्॥

"जब भक्त के हृदय में भक्ति और क्रोध मिलते हैं, तो उस आस्वादन को रौद्र-भक्ति-रस कहते हैं।"

भयानक-भक्तिरस का वर्णन इस प्रकार है (*भक्तिरसामृतसिन्धु* ४.६.१) :

वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः पुष्टिं भयरतिर्गता।
भयानकाभिधो भक्तिरसो धीरैरु-दीर्यते॥

"जब भय के साथ भक्ति मिल जाती है, तब यह भयानक-भक्ति-रस कहलाता है।"

बीभत्स-भक्ति-रस का वर्णन इस प्रकार है (*भक्तिरसामृतसिन्धु* ४.७.१) :

पुष्टिं निजविभावाद्यैर्जुगुप्सारतिरागता।
असौ भक्तिरसोधीरैर्बीभत्साख्य इतीर्यते॥

"जब घृणित ढंग से कृष्ण के साथ अनुरक्ति उत्पन्न होती है और भक्त उसका आस्वादन करता है, तो उसे बीभत्स-भक्ति-रस कहते हैं।"

निष्कर्ष यह है कि जब भक्त पाँच प्रमुख रसों (शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर) में से किसी एक में स्थित होता है और वह रस सात गौण भक्ति रसों (हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक तथा बीभत्स) में से किसी एक या अधिक रसों के साथ मिलता है, तब गौण रस प्रमुख बन जाता है।

পঞ্চ-রস 'স্থায়ী' ব্যাপী রহে ভক্ত-মনে ।
সপ্ত গৌণ 'আগন্তুক' পাইয়ে কারণে ॥১৮৮॥

পঞ্চ-রস 'স্থায়ী' ব্যাপী রহে ভক্ত-মনে ।
সপ্ত গৌণ 'আগন্তুক' পাইয়ে কারণে ॥ ১৮৮ ॥

পঞ্চ-রস—পাঁচ প্রত্যক্ষ দিব্য রস; **স্থায়ী**—স্থায়ী; **ব্যাপী**—ব্যাপক; **রহে**—বনে রহতে হৈঁ; **ভক্ত-মনে**—ভক্ত কে মন মেঁ; **সপ্ত গৌণ**—সাত গৌণ রস; **আগন্তুক**—অচানক; **পাইয়ে**—প্রকট হোতে হৈঁ; **কারণে**—বিশেষ পরিস্থিতিয়োঁ মেঁ।

অনুবাদ

"ভক্তি কে পাঁচ প্রত্যক্ষ দিব্য রস ভক্ত কে হৃদয় মেঁ স্থায়ী রূপ সে স্থিত রহতে হৈঁ, জবকি সাত গৌণ ভাব কিন্হীঁ বিশেষ পরিস্থিতিয়োঁ মেঁ সহসা প্রকট হোতে হৈঁ ঔর অধিক প্রবল প্রতীত হোতে হৈঁ।

শান্ত-ভক্ত—নব-যোগেন্দ্র, সনকাদি আর ।
দাস্য-ভাব-ভক্ত—সর্বত্র সেবক অপার ॥১৮৯॥

শান্ত-ভক্ত—নব-যোগেন্দ্র, সনকাদি আর ।
দাস্য-ভাব-ভক্ত—সর্বত্র সেবক অপার ॥ ১৮৯ ॥

শান্ত-ভক্ত—শান্ত ভক্ত; **নব**—নৌ; **যোগেন্দ্র**—সাধু পুরুষ; **সনক-আদি আর**—ঔর সনক আদি চার কুমার; **দাস্য-ভাব-ভক্ত**—দাস্য ভাব মেঁ ভক্ত; **সর্বত্র সেবক অপার**—সব জগহ ঐসে অসংখ্য দাস।

अनुवाद

"शान्त भक्तों के उदाहरणों में नव योगेन्द्र तथा चार कुमार आते हैं। दास्य भक्ति के भक्तों के उदाहरण असंख्य हैं, क्योंकि ऐसे भक्त सर्वत्र हैं।

तात्पर्य

नौ योगेन्द्रों के नाम हैं—कवि, हवि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रविड (द्रुमिल), चमस तथा करभाजन। चार कुमार हैं—सनक, सनन्दन, सनत्कुमार तथा सनातन। गोकुल के दास भक्तों में रक्तक, चित्रक, पत्रक आदि के नाम आते हैं। द्वारका में दारुक तथा भौतिक जगत् में भगवान् की लीलाओं में हनुमान जैसे दास हैं।

सख्य-भक्त—श्रीदामादि, पुरे भीमार्जुन ।
वात्सल्य-भक्त—माता पिता, यत गुरु-जन ॥ १९०॥

सख्य-भक्त—श्रीदामादि, पुरे भीमार्जुन ।
वात्सल्य-भक्त—माता पिता, यत गुरु-जन ॥ १९०॥

सख्य-भक्त—सख्य भाव के भक्त; **श्रीदामा-आदि**—श्रीदामा आदि; **पुरे**—द्वारका में; **भीम-अर्जुन**—भीम एवं अर्जुन; **वात्सल्य-भक्त**—वात्सल्य प्रेम के भक्त; **माता पिता**—माता पिता; **यत गुरु-जन**—अन्य सभी ऐसे गुरुजन।

अनुवाद

"वृन्दावन में सख्य भक्तों में श्रीदामा तथा सुदामा, द्वारका में भीम तथा अर्जुन, वृन्दावन में वात्सल्य प्रेमी भक्त माता यशोदा तथा पिता नन्द महाराज और द्वारका में भगवान् के माता-पिता वसुदेव तथा देवकी हैं। अन्य गुरुजन भी वात्सल्य प्रेमी भक्त हैं।

मधुर-रसे भक्त-मुख्य—व्रजे गोपी-गण ।
महिषी-गण, लक्ष्मी-गण, असङ्ख्य गणन ॥ १९१॥

मधुर-रसे भक्त-मुख्य—व्रजे गोपी-गण ।
महिषी-गण, लक्ष्मी-गण, असङ्ख्य गणन ॥ १९१॥

मधुर-रसे—माधुर्य रस के; **भक्त-मुख्य**—मुख्य भक्त; **व्रजे**—वृन्दावन में; **गोपी-गण**—गोपियाँ; **महिषी-गण**—द्वारका की रानियाँ; **लक्ष्मी-गण**—वैकुण्ठ की लक्ष्मियाँ; **असङ्ख्य गणन**—असंख्य गणना।

अनुवाद

"माधुर्य प्रेम में प्रमुख भक्त हैं—वृन्दावन की गोपियाँ, द्वारका की पटरानियाँ तथा वैकुण्ठ की लक्ष्मियाँ। इन भक्तों की संख्या अनन्त है।

पुनः कृष्ण-रति हय दुईत प्रकार ।
ऐश्वर्य-ज्ञान-मिश्रा, केवला-भेद आर ॥ १९२॥

पुनः कृष्ण-रति हय दुइत प्रकार ।
ऐश्वर्य्य-ज्ञान-मिश्रा, केवला-भेद आर ॥ १९२॥

पुनः—पुनः; **कृष्ण-रति**—कृष्ण के लिए अनुरक्ति; **हय**—होती है; **दुइत**—दो; **प्रकार**—प्रकार; **ऐश्वर्य्य-ज्ञान-मिश्रा**—ऐश्वर्य (पूजा भाव) से मिश्रित कृष्ण का ज्ञान; **केवला**—शुद्ध आसक्ति; **भेद**—भेद; **आर**—अन्य।

अनुवाद

"कृष्ण रति दो प्रकार की है—पहली ऐश्वर्य-ज्ञान-मिश्रित रति तथा दूसरी ऐश्वर्य-ज्ञान-रहित शुद्ध रति (केवला)।

गोकुले 'केवला' रति—ऐश्वर्य-ज्ञान-हीन ।
पुरी-द्वये, वैकुण्ठाद्ये—ऐश्वर्य-प्रवीण ॥ १९३॥

गोकुले 'केवला' रति—ऐश्वर्य्य-ज्ञान-हीन ।
पुरी-द्वये, वैकुण्ठाद्ये—ऐश्वर्य्य-प्रवीण ॥ १९३॥

गोकुले—गोकुल वृन्दावन में; **केवला रति**—विशुद्ध आसक्ति; **ऐश्वर्य्य-ज्ञान-हीन**—ऐश्वर्य (आदर के भाव से रहित; **पुरी-द्वये**—मथुरापुरी तथा द्वारकापुरी, दो पुरियों में; **वैकुण्ठ-आद्ये**—वैकुण्ठ आदि में; **ऐश्वर्य्य-प्रवीण**—ऐश्वर्य प्रधान।

अनुवाद

"ऐश्वर्य-ज्ञान-विहीन शुद्ध रति गोलोक वृन्दावन में पाई जाती है। ऐश्वर्य तथा ज्ञान से युक्त रति मथुरा तथा द्वारका इन दो पुरियों तथा वैकुण्ठ में पाई जाती है।

ঐশ্বর্য-জ্ঞান-প্রাধান্যে সঙ্কুচিত প্রীতি ।
দেখিয়া না মানে ঐশ্বর্য—কেবলার রীতি ॥ ১৯৪॥

ঐশ্বর্য্য-জ্ঞান-প্রাধান্যে সঙ্কুচিত প্রীতি ।
দেখিয়া না মানে ঐশ্বর্য্য—কেবলার রীতি ॥ ১৯৪॥

ऐश्वर्य्य-ज्ञान-प्राधान्ये—भय तथा आदर की प्रधानता के होते हुए; **सङ्कुचित**—अपंग; **प्रीति**—प्रेम; **देखिया**—देखकर; **ना माने**—नहीं मानता; **ऐश्वर्य्य**—ऐश्वर्य; **केवलार रीति**—शुद्ध भक्ति का लक्षण।

अनुवाद

"ऐश्वर्य प्रधान होने पर भगवत्प्रेम कुछ संकुचित हो जाता है। किन्तु केवला भक्ति में भक्त कृष्ण की असीम शक्ति को देखते हुए भी अपने आपको उनके समान मानता है।

শান্ত-দাস্য-রসে ঐশ্বর্য কাহাঁ উদ্দীপন ।
বাত্সল্য-সখ্য-মধুরে ত' করে সঙ্কোচন ॥ ১৯৫॥

শান্ত-দাস্য-রসে ঐশ্বর্য্য কাহাঁ উদ্দীপন ।
বাত্সল্য-সখ্য-মধুরে ত' করে সঙ্কোচন ॥ ১৯৫॥

शान्त-दास्य-रसे—शान्त, दास्य के दिव्य रसों में; **ऐश्वर्य्य**—ऐश्वर्य; **काहाँ**—कहीं कहीं; **उद्दीपन**—प्रकट होता है; **वात्सल्य-सख्य-मधुरे**—वात्सल्य, सख्य तथा माधुर्य रसों में; **त'**—निस्सन्देह; **करे**—हो जाती है; **सङ्कोचन**—कम।

अनुवाद

"शान्त तथा दास्य रस के स्तर पर कभी-कभी भगवान् का ऐश्वर्य प्रमुख होता है। किन्तु वात्सल्य, सख्य तथा माधुर्य रसों में ऐश्वर्य संकुचित हो जाता है।

বসুদেব-দেবকীর কৃষ্ণ চরণ বন্দিল ।
ঐশ্বর্য-জ্ঞানে দুঁহার মনে ভয় হৈল ॥ ১৯৬॥

বসুদেব-দেবকীর কৃষ্ণ চরণ বন্দিল ।
ঐশ্বর্য্য-জ্ঞানে দুঁহার মনে ভয় হৈল ॥ ১৯৬॥

वसुदेव-देवकीर—वसुदेव और देवकी के; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **चरण**—चरणकमलों पर; **वन्दिल**—वन्दन किया; **ऐश्वर्य्य-ज्ञाने**—ऐश्वर्य के ज्ञान के कारण; **दुँहार**—उन दोनों के; **मने**—मनों में; **भय हैल**—डर था।

अनुवाद

"जब कृष्ण ने अपने माता-पिता वसुदेव-देवकी के चरणकमलों की वन्दना की, तो दोनों के मनों में उनके ऐश्वर्य के ज्ञान के कारण भय तथा आदर उत्पन्न हुआ।

देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ ।
कृत-संवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ ॥ १९७॥

देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ ।
कृत-संवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ ॥ १९७॥

देवकी—देवकी; **वसुदेवः**—वसुदेव; **च**—और; **विज्ञाय**—समझकर; **जगत्-ईश्वरौ**—जगत् के दो भगवान्; **कृत-संवन्दनौ**—नमस्कार करने पर; **पुत्रौ**—कृष्ण और बलराम दोनों पुत्र; **सस्वजाते**—आलिंगन किया; **न**—नहीं; **शङ्कितौ**—भय (शंका) होने के कारण।

अनुवाद

"'जब देवकी तथा वसुदेव ने यह समझ लिया कि उन्हें प्रणाम करने वाले उनके दोनों पुत्र कृष्ण तथा बलराम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, तो वे भयभीत हो उठे और उन्होंने उनका आलिंगन नहीं किया।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.४४.५१) का है और कृष्ण तथा बलराम द्वारा कंस-वध के बाद की घटना का वर्णन करता है। वसुदेव तथा देवकी ने अपने पुत्र द्वारा बलशाली असुर कंस का वध होते देखा और इसके तुरन्त बाद उन्हें बन्धन-मुक्त कर दिया गया। तब बलराम और कृष्ण ने देवकी तथा वसुदेव को नमस्कार किया। माता तथा पिता दोनों अपने पुत्रों का आलिंगन करना चाहते थे, किन्तु वे जान गये कि कृष्ण तथा बलराम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं; अतएव वे उनका आलिंगन करने में संकोच का अनुभव कर रहे थे। इस तरह कृष्ण तथा बलराम के प्रति उनके वात्सल्य प्रेम में बाधा उत्पन्न हुई और ऐश्वर्य के कारण संकुचित हुआ।

कृष्णेर विश्व-रूप देखि' अर्जुनेर हैल भय ।
सख्य-भावे धार्ष्ट्य क्षमापय करिया विनय ॥ १९८॥

कृष्णेर विश्व-रूप देखि' अर्जुनेर हैल भय ।
सख्य-भावे धार्ष्ट्यं क्षमापय करिया विनय ॥ १९८॥

कृष्णेर—भगवान् कृष्ण का; **विश्व-रूप**—विराट् रूप; **देखि'**—देखकर; **अर्जुनेर**—अर्जुन को; **हैल भय**—भय हो गया; **सख्य-भावे**—मित्र के रूप में; **धार्ष्ट्यं**—धृष्टता; **क्षमापय**—के लिए क्षमा माँगी; **करिया**—करके; **विनय**—विनय।

अनुवाद

"जब कृष्ण ने अपना विराट् रूप दिखलाया, तो अर्जुन भयभीत हो उठा और उसने मित्र रूप के में कृष्ण के प्रति दिखलाई गई धृष्टता के लिए उनसे क्षमा माँगी।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥ १९९॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहार-शय्यासन-भोजनेषु ।
एकोऽथ वाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ २००॥

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥ १९९॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहार-शय्यासन-भोजनेषु ।
एकोऽथ वाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ २००॥

सखा—मित्र; **इति**—इस प्रकार; **मत्वा**—मानकर; **प्रसभम्**—जबरदस्ती; **यत्**—वह जो; **उक्तम्**—कहा गया; **हे कृष्ण**—हे कृष्ण; **हे यादव**—हे यादव; **हे सखा**—हे प्रिय सखा;

इति—इस प्रकार; **अजानता**—अनजाने में; **महिमानम्**—महिमा; **तव**—आपकी; **इदम्**—यह; **मया**—मेरे द्वारा; **प्रमादात्**—अज्ञान में; **प्रणयेन**—स्नेह में; **वा**—अथवा; **अपि**—निश्चित रूप से; **यत्**—जो कुछ; **च**—और; **अवहास-अर्थम्**—हँसी विनोद में, परिहास में; **असत्-कृतः**—अपमान किया गया; **असि**—आप हैं; **विहार**—परिहास में; **शय्या-आसन**—बैठे अथवा सोते समय; **भोजनेषु**—साथ में भोजन करते समय; **एकः**—अकेले; **अथ वा**—अथवा; **अपि**—निस्सन्देह; **अच्युत**—हे प्रिय कृष्ण; **तत्-समक्षम्**—दूसरों की उपस्थिति में; **तत्**—वे सब; **क्षामये**—क्षमा माँगता हूँ; **त्वाम्**—आप से; **अहम्**—मैं; **अप्रमेयम्**—जो असीम हैं।

अनुवाद

"'मैंने आपकी महिमा न जानने के कारण और आपको मित्र समझकर "हे कृष्ण," "हे यादव," "हे मित्र," कहकर सम्बोधित किया है। मैंने पागलपन या प्रेम में जो कुछ भी किया है, कृपा करके उसके लिए क्षमा कर दें। मैंने एक ही बिस्तर में लेटे हुए परिहास में, साथ-साथ बैठे या खाते हुए, कभी अकेले में तो कभी अपने मित्रों के सामने कई बार आपका अनादर किया है। हे अच्युत, कृपया मेरे उन सारे अपराधों को क्षमा कर दें।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *भगवद्गीता* (११.४१-४२) से है। यह वचन अर्जुन ने कृष्ण से कहे, जब कृष्ण कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में अपना विराट् रूप प्रदर्शित कर रहे थे।

কৃষ্ণ যদি রুক্মিণীরে কৈলা পরিহাস ।
'কৃষ্ণ ছাড়িবেন'—জানি' রুক্মিণীর হৈল ত্রাস ॥২০১॥

कृष्ण यदि रुक्मिणीरे कैला परिहास ।
'कृष्ण छाड़िबेन'—जानि' रुक्मिणीर हैल त्रास ॥ २०१ ॥

कृष्ण—भगवान् कृष्ण; **यदि**—यद्यपि; **रुक्मिणीरे**—महारानी रुक्मिणी से; **कैला**—किया; **परिहास**—परिहास; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **छाड़िबेन**—मुझे त्याग देंगे; **जानि'**—यह सोचकर; **रुक्मिणीर**—रुक्मिणी को; **हैल**—हुआ; **त्रास**—आघात।

अनुवाद

"यद्यपि कृष्ण महारानी रुक्मिणी से परिहास कर रहे थे, किन्तु वे

सोच रही थीं कि कृष्ण उनका साथ छोड़ने वाले हैं, जिससे उन्हें भय लगा।

तस्याः सु-दुःख-भय-शोक-विनष्ट-बुद्धेर्
हस्ताच्छ्लथद्वलयतो व्यजनं पपात ।
देहश्च विक्लव-धियः सहसैव मुह्यन्
रम्भेव वात-विहता प्रविकीर्य केशान् ॥२०२॥

तस्याः सु-दुःख-भय-शोक-विनष्ट-बुद्धेर्
हस्ताच्छ्लथद्वलयतो व्यजनं पपात ।
देहश्च विक्लव-धियः सहसैव मुह्यन्
रम्भेव वात-विहता प्रविकीर्य केशान् ॥ २०२ ॥

तस्याः—उनकी; **सु-दुःख-भय**—महान् दुःख और भय के कारण; **शोक**—और शोक; **विनष्ट**—नष्ट; **बुद्धेः**—जिनकी बुद्धि; **हस्तात्**—हाथ से; **श्लथत्**—ढीली होने के कारण; **वलयतः**—चूड़ियाँ; **व्यजनम्**—पंखा; **पपात**—गिर गये; **देहः**—शरीर; **च**—और; **विक्लव**—भय से शक्तिहीन; **धियः**—जिनकी बुद्धि; **सहसा एव**—अचानक; **मुह्यन्**—अचेत हो गई; **रम्भा इव**—केले के पेड़ की तरह; **वात-विहता**—तुफान से गिराई गई; **प्रविकीर्य**—बिखरे; **केशान्**—बाल।

अनुवाद

"'जब कृष्ण द्वारका में रुक्मिणी से परिहास कर रहे थे, तब वे दुःख, भय तथा शोक से संतप्त हो गईं। उनकी बुद्धि भी नष्ट हो गई थी। उन्होंने अपने हाथ की चूड़ियाँ गिरा दीं और जिस पंखे से भगवान् को पंखा झल रही थीं वह भी गिर गया। उनके बाल बिखर गये और वे सहसा बेहोश होकर गिर पड़ीं, मानों तेज हवा से केले का कोई वृक्ष गिर गया हो।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.६०.२४) का है और जब जो कृष्ण अपने शयन-कक्ष में रुक्मिणी के साथ बात कर रहे थे, उसका निर्देश करता है। उनकी निष्ठा की परीक्षा करने के लिए कृष्ण उनसे परिहास करने लगे कि मैं दीन हूँ और तुम्हारा प्रेमी बनने के योग्य नहीं हूँ। रुक्मिणी यह नहीं समझ पाईं कि वे परिहास कर रहे हैं; अतः उन्होंने सोचा कि कृष्ण उनका परित्याग करने

वाले हैं। इस गलतफहमी से वे अत्यन्त दु:खी हो गईं और उनका सारा शरीर प्रभावित हो गया। उनके हाथ की चूड़ियाँ तथा हाथ में लिया हुआ पंखा भूमि पर गिर पड़े और वे भी तेज हवा के झोंके से प्रताड़ित केले के वृक्ष के समान भूमि पर गिर पड़ीं।

'केवला'र शुद्ध-प्रेम 'ऐश्वर्य' ना जाने ।
ऐश्वर्य देखिलेओ निज-सम्बन्ध से माने ॥२०३॥

'केवला'र शुद्ध-प्रेम 'ऐश्वर्य्य' ना जाने ।
ऐश्वर्य्य देखिलेओ निज-सम्बन्ध से माने ॥ २०३ ॥

केवलार—कृष्ण के लिए अमिश्रित प्रेम का; **शुद्ध-प्रेम**—शुद्ध प्रेम; **ऐश्वर्य्य**—ऐश्वर्य; **ना जाने**—नहीं जानता; **ऐश्वर्य्य**—ऐश्वर्य; **देखिलेओ**—देखने के बावजूद; **निज-सम्बन्ध**—कृष्ण के साथ अपना निजी सम्बन्ध; **से माने**—वह गम्भीरता से लेता है।

अनुवाद

"केवला (शुद्ध भक्ति) की अवस्था में भक्त अनुभव करते हुए भी कृष्ण के असीम ऐश्वर्य को नहीं मानता। वह कृष्ण से अपने सम्बन्ध के विषय में ही गम्भीरता से विचार करता है।

तात्पर्य

जब भक्त कृष्ण के साथ, विशेषतया सख्य भाव में, *अनन्य भक्ति* की अवस्था को प्राप्त करता है, तब वह भगवान् के ऐश्वर्यों को देखते हुए भी उन्हें भूल जाता है और अपने आपको कृष्ण के समकक्ष मानने लगता है। कृष्ण से समता करने का वस्तुत: प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु भक्त कृष्णभावना में इतना उन्नत हो जाता है कि वह कृष्ण के साथ सामान्य व्यक्ति के समान व्यवहार कर सकता है।

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च साङ्ख्य-योगैश्च साङ्गतैः ।
उपगीयमान-माहात्म्यं हरिं सामन्यतात्मजम् ॥२०४॥

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च साङ्ख्य-योगैश्च सात्वतैः ।
उपगीयमान-माहात्म्यं हरिं साऽमन्यतात्मजम् ॥ २०४ ॥

त्रय्या—तीन वेदों के अनुयायी जो महान् यज्ञ करते हैं, जैसे इन्द्र देव के लिए किये जाने वाले यज्ञ; **च**—और; **उपनिषद्भिः**—वेदों के उच्च भागों उपनिषदों के अनुयायी (जैसे ब्राह्मणों) से; **च**—और; **साङ्ख्य**—उन दार्शनिकों से जो ब्रह्माण्ड का (पुरुष की भाँति) विश्लेषणात्मक अध्ययन करते हैं; **योगैः**—योगियों से (सर्वत्र विद्यमान परमात्मा के रूप में); **च**—और; **सात्वतैः**—उन भक्तों द्वारा (भगवान् के रूप में), जो पंचरात्र और अन्य वैदिक साहित्य द्वारा वर्णित पूजा-विधि का पालन करते हैं; **उपगीयमान**—गाई जाती है; **माहात्म्यम्**—जिनकी महिमाएँ; **हरिम्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को; **सा**—वे (माता यशोदा); **अमन्यत**—मानती थीं; **आत्म-जम्**—अपने ही शरीर से जन्मा पुत्र।

अनुवाद

"'जब माता यशोदा ने कृष्ण के मुँह के भीतर सारे ब्रह्माण्डों को देखा, तो क्षण-भर के लिए वे आश्चर्यचकित हो गईं। तीनों वेदों के अनुयायियों द्वारा भगवान्, इन्द्र देव तथा अन्य देवताओं की तरह पूजे जाते हैं। ऐसे अनुयायी भगवान् के लिए यज्ञ करते हैं। उपनिषदों के अध्ययन द्वारा उनकी महानता को जानकर ऋषिगण भगवान् की पूजा निर्विशेष ब्रह्म के रूप में करते हैं। बड़े-बड़े दार्शनिक जो ब्रह्माण्ड का विश्लेषात्मक अध्ययन करते हैं, उनको पुरुष के रूप में पूजते हैं। बड़े-बड़े योगी उन्हें सर्वव्यापक परमात्मा के रूप में तथा भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में पूजते हैं। फिर भी माता यशोदा उन्हें अपने पुत्र के रूप में मानती थीं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.८.४५) से उद्धृत है। भक्ति में उन्नत लोग योगमाया की कृपा से कृष्ण के ऐश्वर्य को भूल जाते हैं। उदाहरणार्थ माता यशोदा कृष्ण को सामान्य शिशु मानती थीं।

तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्य-लिङ्गमधोक्षजम् ।
गोपिकोलूखले दाम्ना ववन्ध प्राकृतं यथा ॥२०५॥

तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्य-लिङ्गमधोक्षजम् ।
गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥ २०५॥

तम्—उनको (कृष्ण को); **मत्वा**—मानकर; **आत्मजम्**—अपना पुत्र; **अव्यक्तम्**—

अप्रकट; **मर्त्य-लिङ्गम्**—नाशवान् जैसा प्रकट किया; **अधोक्षजम्**—इन्द्रियों के अनुभव से परे; **गोपिका**—माता यशोदा; **उलूखले**—ऊखल के साथ; **दाम्ना**—रस्सी से; **बबन्ध**—बाँध दिया; **प्राकृतम्**—एक सामान्य शिशु; **यथा**—की तरह।

अनुवाद

'"यद्यपि कृष्ण इन्द्रिय अनुभूति से परे तथा मनुष्यों के लिए अप्रकट हैं, किन्तु वे भौतिक शरीरधारी मनुष्य का वेश धारण करते हैं। इस तरह माता यशोदा ने उन्हें अपना पुत्र माना और ओखली से एक रस्सी द्वारा भगवान् कृष्ण के बाँध दिया, मानो वे सामान्य बालक हों।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.९.१४) से लिया गया है, जिसमें भगवान् कृष्ण माता यशोदा के समक्ष अपने आपको सामान्य बालक के रूप में प्रकट करते हैं। वे नटखट बालक के समान खेलते थे, मक्खन चुराते तथा मटकियाँ तोड़ते थे। इस पर माता यशोदा उद्विग्न हो उठीं और उन्होंने कृष्ण को ओखली से बाँधना चाहा। दूसरे शब्दों में, उन्होंने भगवान् को सामान्य बालक मान रखा था।

ঊবাহ কৃষ্ণো ভগবান্শ্রীদামানং পরাজিতঃ ।
বৃষভং ভদ্রসেনস্তু প্রলম্বো রোহিণী-সুতম্ ॥২০৬॥

उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः ।
वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणी-सुतम् ॥ २०६ ॥

उवाह—उठाया; **कृष्णः**—भगवान् कृष्ण; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **श्रीदामानम्**—श्रीदामा को; **पराजितः**—पराजित होने पर; **वृषभम्**—वृषभ; **भद्रसेनः**—भद्रसेन; **तु**—और; **प्रलम्बः**—प्रलम्ब; **रोहिणी-सुतम्**—रोहिणी के पुत्र बलराम।

अनुवाद

'"जब कृष्ण श्रीदामा से हार गये, तो उन्हें श्रीदामा को अपने कंधों पर ले जाना पड़ा। इसी तरह भद्रसेन ने वृषभ को तथा प्रलम्ब ने रोहिणी सुत बलराम को उठाया था।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.१८.२४) से लिया गया है। जब सारे

ग्वालबाल वृन्दावन के जंगल में खेल रहे थे, तब कृष्ण तथा बलराम का हरण करने के लिए प्रलम्बासुर राक्षस आया। यह असुर एक ग्वालबाल के रूप में प्रकट हुआ था, किन्तु कृष्ण उसकी चाल समझ गये। अत: उन्होंने ग्वालों के दो दल बना लिए। एक दल बलराम का था और दूसरा स्वयं कृष्ण का था। इस खेल में कृष्ण हार गये; और खेल की शर्त के अनुसार, पराजित दल द्वारा विजयी दल को अपने कन्धों पर उठाया जाना था। कृष्ण ने अपने कन्धों पर श्रीदामा को और भद्रसेन ने वृषभ को उठाया। प्रलम्बासुर ने बलराम को उठाया, किन्तु जब बलराम उसके कंधे पर चढ़ गये, तो वह असुर दूर भाग चला। अन्त में वह अपना शरीर बढ़ाने लगा, जिससे बलराम समझ गये कि वह उन्हें मारना चाहता है। अत: बलराम ने तुरन्त ही असुर के सिर पर अपनी मजबूत मुट्ठी से आघात किया। इससे वह असुर भूमि पर गिरकर मर गया, मानो किसी सर्प के फन को कुचल दिया गया हो।

सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठां सर्व-योषिताम् ।
हित्वा गोपीः काम-याना मामसौ भजते प्रियः ॥२०७॥
ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् ।
न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥२०८॥
एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्धमारुह्यतामिति ।
ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥२०९॥
सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठां सर्व-योषिताम् ।
हित्वा गोपीः काम-याना मामसौ भजते प्रियः ॥ २०७॥
ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् ।
न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥ २०८॥
एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्धमारुह्यतामिति ।
ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥ २०९॥

सा—श्रीमती राधारानी; **च**—और; **मेने**—सोचा; **तदा**—उस समय; **आत्मानम्**—स्वयं; **वरिष्ठाम्**—सबसे श्रेष्ठ; **सर्व-योषिताम्**—सभी गोपियों में से; **हित्वा**—छोड़कर; **गोपीः**—सभी गोपियों को; **काम-याना:**—जो कृष्ण की संगति चाहती थीं; **माम्**—मुझे; **असौ**—श्रीकृष्ण; **भजते**—पूजते हैं; **प्रियः**—सर्वाधिक प्रिय; **ततः**—तब; **गत्वा**—जाकर;

वन-उद्देशम्—घने वन में; **दृप्ता**—अति अभिमानित होकर; **केशवम्**—कृष्ण को; **अब्रवीत्**—कहने लगी; **न पारये**—सक्षम नहीं हूँ; **अहम्**—मैं; **चलितुम्**—चलने के लिए; **नय**—उठा लो; **माम्**—मुझे; **यत्र**—जहाँ भी; **ते**—आपका; **मनः**—मन; **एवम् उक्तः**—श्रीमती राधारानी से इस प्रकार कहा गया; **प्रियाम्**—सर्वप्रिय गोपी को; **आह**—कहा; **स्कन्धम्**—मेरे कन्धे; **आरुह्यताम्**—पर चढ़ जाओ; **इति**—इस प्रकार; **ततः**—तब; **च**—भी; **अन्तर्दधे**—अन्तर्धान हो गये; **कृष्णः**—भगवान् कृष्ण; **सा**—श्रीमती राधारानी; **वधूः**—गोपी; **अन्वतप्यत**—शोक करने लगीं।

अनुवाद

"'"हे प्रियतम कृष्ण, आप तुम मेरी पूजा कर रहे हो और उन सारी गोपियों का साथ छोड़ रहे हो, जो आपके साथ आनन्द भोगना चाहती हैं।" ऐसा सोचती हुई श्रीमती राधारानी ने अपने आपको कृष्ण की सर्वाधिक प्रिय गोपी मान लिया। उन्हें गर्व हो गया था और कृष्ण के साथ उन्होंने रासलीला छोड़ दी थी। उन्होंने गहन वन में कहा, "हे प्रिय कृष्ण, अब मैं और अधिक नहीं चल सकती। आप जहाँ चाहो मुझे ले चलो।" जब श्रीमती राधारानी ने इस प्रकार से कृष्ण से याचना की तो कृष्ण ने कहा, "तुम मेरे कंधों पर चढ़ जाओ।" ज्योंही राधारानी ऐसा करने लगीं कि वे अदृश्य हो गये। तब श्रीमती राधारानी अपनी प्रार्थना तथा कृष्ण के अदृश्य होने पर शोक करने लगीं।'

तात्पर्य

ये तीनों श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.३०.३६-३८) से उद्धृत हैं।

पति-सुतान्वय-भ्रातृ-बान्धवान्
अतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ।
गति-विदस्तवोदगीत-मोहिताः
कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥२१०॥

पति-सुतान्वय-भ्रातृ-बान्धवान्
अतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ।
गति-विदस्तवोद्गीत-मोहिताः
कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥२१०॥

पति—पति; **सुत**—पुत्र; **अन्वय**—परिवार; **भ्रातृ**—भाई; **बान्धवान्**—मित्र; **अतिविलङ्घ्य**—बिना परवाह किये; **ते**—आपके; **अन्ति**—प्रिय आश्रय; **अच्युत**—हे अच्युत; **आगताः**—आ गई हैं; **गति-विदः**—जो हमारी गतिविधियाँ जानते हैं; **तव**—आपका; **उद्गीत**—बांसुरी की ध्वनी द्वारा; **मोहिताः**—मोहित होकर; **कितव**—हे महान् छलिये; **स्त्रीषितः**—सुन्दर स्त्रियाँ; **कः**—कौन; **त्यजेत्**—त्यागेगा; **निशि**—अर्धरात्रि को।

अनुवाद

"'हे कृष्ण, हम सब अपने पतियों, पुत्रों, परिवार, भाइयों तथा मित्रों के आदेश की अवहेलना करके उनका साथ छोड़कर आपके पास आई हैं। आप हमारी इच्छाओं के विषय में सब कुछ जानते हैं। हम तो आपकी परम संगीतमयी बाँसुरी से आकृष्ट होकर आई हैं। तो भी, आप बहुत बड़े ठग हो। भला ऐसा कौन होगा जो इस तरह रात्रि के अंधकार में हम जैसी तरुणियों का साथ त्यागना चाहेगा?'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.३१.१६) से उद्धृत है, जिसमें यह बतलाया गया है कि किस तरह गोपियों ने रात्रि के अंधकार में अपने आपको कृष्ण की आनन्द-क्रीड़ा के लिए प्रस्तुत किया। गोपियाँ रास नृत्य में उनके साथ आनन्द लूटने के लिए कृष्ण के पास पहुँची थीं। कृष्ण इसे अच्छी तरह जानते थे, किन्तु वे ऊपर से उनसे दूर रहना चाह रहे थे। इसीलिए गोपियाँ उन्हें *कितव* अर्थात् बहुत बड़ा ठग कहकर सम्बोधित करती हैं, क्योंकि कृष्ण ने पहले तो उन्हें अपने साथ नृत्य करने के लिए आकृष्ट किया, किन्तु जब गोपियाँ अपनी सखियों तथा परिवारों के आदेशों की परवाह न करते हुए वहाँ वास्तव में आईं, तो वे उन्हें तथाकथित अच्छा उपदेश देकर उन्हें टालना चाह रहे थे। गोपियों के लिए ये चालाकी भरे उपदेश असह्य थे; इसीलिए वे कृष्ण को *कितव* (बहुत बड़ा-ठग) कहने की अधिकारिणी थीं। वे सभी युवतियाँ थीं और वे उनके साथ आनन्द-क्रीड़ा करने आई थीं। भला कृष्ण उनसे कैसे आँख चुरा सकते थे? इसीलिए इस श्लोक में गोपियाँ अपनी घोर निराशा व्यक्त करती हैं। वे आईं तो स्वेच्छा से थीं, किन्तु कृष्ण इतने चालाक निकले कि वे उनका साथ देने से कतरा रहे थे। गोपियों का शोक निश्चित रूप से उपयुक्त था और इस प्रकार कृष्ण ने उनकी निष्ठा की परीक्षा ली।

शान्त-रसे—'स्वरूप-बुद्ध्यै कृष्णैक-निष्ठता' ।
''शमो मन्निष्ठता बुद्धेः'' इति श्री-मुख-गाथा ॥ २११ ॥

शान्त-रसे—'स्वरूप-बुद्ध्यै कृष्णैक-निष्ठता' ।
"शमो मन्निष्ठता बुद्धेः" इति श्री-मुख-गाथा ॥ २११ ॥

शान्त-रसे—शान्त रस की स्थिति में; **स्वरूप-बुद्ध्यै**—आत्म-साक्षात्कार द्वारा; **कृष्ण-एक-निष्ठता**—कृष्ण के चरणकमलों की पूर्ण भक्ति; **शमः**—समता; **मत्**—मेरे प्रति; **निष्ठता**—आसक्ति का गुण; **बुद्धेः**—मन का; **इति**—इस प्रकार; **श्री-मुख**—भगवान् के मुख से; **गाथा**—एक श्लोक।

अनुवाद

"जब कोई कृष्ण के चरणकमलों में पूरी तरह लगा रहता है, तब उसे शमता अवस्था प्राप्त होती है। 'शमता' शब्द 'शम' से निकला है। अतः शान्त रस (तटस्थ अवस्था) का अर्थ है, भगवान् कृष्ण के चरणों में पूरी तरह लगे रहना। यह साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के मुख से निकला निर्णय है। यह अवस्था आत्म-साक्षात्कार कहलाती है।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में *भक्तिरसामृतसिन्धु* (३.१.४७) का श्लोक आगे दिया गया है।

शमो मन्निष्ठता बुद्धेरिति श्री-भगवद्वचः ।
तन्निष्ठा दुर्घटा बुद्धेरेतां शान्त-रतिं विना ॥ २१२ ॥

शमो मन्निष्ठता बुद्धेरिति श्री-भगवद्वचः ।
तन्निष्ठा दुर्घटा बुद्धेरेतां शान्त-रतिं विना ॥ २१२ ॥

शमः—समता अथवा शान्त रस; **मत्-निष्ठता**—मेरे चरणकमलों में स्थित होने पर; **बुद्धेः**—बुद्धि के; **इति**—इस प्रकार; **श्री-भगवत्-वचः**—भगवान् के वचन; **तत्-निष्ठा**—उनके लिए आसक्ति अथवा आकर्षण; **दुर्घटा**—दुर्लभ; **बुद्धेः**—बुद्धि का; **एताम्**—इस प्रकार; **शान्त-रतिम्**—शान्त रस के स्तर पर आकर्षण; **विना**—के बिना।

अनुवाद

"'पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के वचन हैं : "जब किसी की बुद्धि मेरे चरणकमलों में पूरी तरह संलग्न रहती है, किन्तु वह व्यक्ति किसी तरह

की व्यावहारिक सेवा नहीं करता, तो उसे शान्त-रति या शम अवस्था प्राप्त हुई रहती है।" शान्त रति के बिना कृष्ण के प्रति अनुरक्ति प्राप्त कर पाना अत्यन्त कठिन है।'

शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रिय-संयमः ।
तितिक्षा दुःख-सम्मर्षो जिह्वोपस्थ-जयो धृतिः ॥ २१३॥
शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रिय-संयमः ।
तितिक्षा दुःख-सम्मर्षो जिह्वोपस्थ-जयो धृतिः ॥ २१३॥

शमः—समता; **मत्-निष्ठता**—मेरी ओर आसक्ति; **बुद्धेः**—बुद्धि की; **दमः**—आत्म नियन्त्रण; **इन्द्रिय-संयमः**—इन्द्रिय संयम; **तितिक्षा**—सहिष्णुता; **दुःख**—दुःख की; **सम्मर्षः**—सहनशीलता; **जिह्वा**—जीभ; **उपस्थ**—जननेन्द्रियों का वेग; **जयः**—विजय; **धृतिः**—धृति, नियन्त्रण।

अनुवाद

'"शम या शान्त-रस शब्द इसका सूचक है कि मनुष्य कृष्ण के चरणकमलों के प्रति अनुरक्त है। दम का अर्थ है इन्द्रियों को वश में रखना और भगवान् की सेवा से तनिक भी विचलित न होना। दुःख का सहना तितिक्षा है और धृति का अर्थ है जीभ तथा उपस्थ (जननेंद्रियों) को वश में रखना।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (११.१९.३६) का है। बद्धजीव भौतिक शक्ति माया के वशीभूत होकर जीभ तथा उपस्थ के वेगों से अत्यधिक चलायमान होता रहता है। जीभ, उदर तथा उपस्थ—ये तीनों एक ही पंक्ति में हैं और इन के वेगों पर संयम रखने का नाम *धृति* है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं, *तार मध्ये जिह्वा अति, लोभमय सुदुर्मति।* इन्द्रियों में से जीभ बद्धजीव की सबसे विकट शत्रु है। जीभ के आवेग से मनुष्य अनेक पापकर्म करता है। यद्यपि कृष्ण ने मनुष्यों को एक से एक उत्तम भोज्य पदार्थ दिये हैं, फिर भी लोग अपनी जीभ की तुष्टि के लिए बेचारे दीन पशुओं का वध करते हैं। जीभ को वश में न रख पाने से बद्धजीव आवश्यकता से अधिक खाता है। निस्सन्देह,

हर व्यक्ति को उतना तो खाना चाहिए, जितने से शरीर भगवान् की सेवा के लिए समर्थ रहे, किन्तु जब व्यक्ति इन्द्रियों पर संयम नहीं रख पाता है, तब वह जीभ तथा उदर के आदेशों का शिकार होने लगता है। इस कारण स्वाभाविक रूप से जननेन्द्रियाँ उत्तेजित हो जाती हैं और मनुष्य अवैध सम्बन्ध की खोज करता है। किन्तु कृष्ण के चरणकमलों पर स्थित होकर मनुष्य अपनी जीभ को वश में कर सकता है। भक्तिविनोद ठाकुर आगे भी कहते हैं—*कृष्ण बड़ दयामय, करिबारे जिह्वा जय, स्व-प्रसाद-अन्न दिला भाइ*—जीभ को वश में करने के लिए कृष्ण ने दया करके हमें उत्तम भोजन प्रदान किया है, जो उनको अर्पित किया जा चुका है। जब मनुष्य कृष्ण के चरणकमलों पर अनुरक्त होता है, तब वह ऐसी कोई चीज नहीं खाता, जो कृष्ण को अर्पित न की गई हो। *सेइ अन्नामृत खाओ, राधा-कृष्ण-गुण गाओ, प्रेमे डाक चैतन्य-निताइ।* चूँकि भक्त केवल प्रसाद खाता है, अतः वह जीभ, उदर तथा उपस्थ के आदेशों पर विजय प्राप्त करता है। शान्त रस की स्थिति में रहकर मनुष्य इन्द्रियों के आदेशों पर नियन्त्रण पा सकता है। तब कृष्णभावना में मनुष्य की प्रगति सुनिश्चित हो जाती है।

कृष्ण बिना तृष्णा-त्याग——तार कार्य मानि ।
अतएव 'शान्त' कृष्ण-भक्त एक जानि ॥२१४॥

कृष्ण विना तृष्णा-त्याग——तार कार्य्य मानि ।
अतएव 'शान्त' कृष्ण-भक्त एक जानि ॥ २१४॥

कृष्ण विना—कृष्ण के बिना; **तृष्णा-त्याग**—सारी कामनाओं त्याग; **तार**—शान्त रस का; **कार्य्य**—कार्य; **मानि**—मैं स्वीकार करता हूँ; **अतएव**—अतएव; **शान्त**—शान्त; **कृष्ण-भक्त**—कृष्ण भक्त; **एक**—मात्र; **जानि**—मैं जानता हूँ।

अनुवाद

"जो शान्त रस को प्राप्त होता है, उसका कार्य है कि उन इच्छाओं का परित्याग करे, जो कृष्ण से सम्बन्धित नहीं हैं। केवल कृष्ण-भक्त ही इस पद को प्राप्त कर सकता है। इस तरह वह शान्त रस भक्त कहलाता है।

तात्पर्य

इस पद पर मनुष्य सारे भौतिक भोग से मुक्त हो जाता है। जब मनुष्य विचलित या उद्विग्न नहीं होता है, तब वह तुरन्त ही कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध को समझ सकता है। अतएव शान्त रस भक्त सदैव आत्मस्थ होता है। यह उपदेश स्वयं भगवान् ने उद्धव को दिया था। शुद्ध भक्ति के आरम्भ को *अन्याभिलाषिता शून्य* कहते हैं। शान्त पद को प्राप्त व्यक्ति भौतिकता से मुक्त होकर आध्यात्मिक पद में स्थित हो जाता है। श्लोक २१३ में आये *दम* शब्द का अर्थ है *इन्द्रिय-संयम। दम* का अर्थ शत्रुओं का दमन भी हो सकता है। राजा को अपनी जनता के अपराधपूर्ण कार्यों का दमन करना पड़ता है। बड़े-बड़े राजर्षि अपने राज्य के अवांछित तत्त्वों को नियन्त्रित करते रहते थे। इसे भी *दम* कह सकते हैं। किन्तु यहाँ पर *दम* उस बद्धजीव का निर्देश करता है, जिसे अपनी इन्द्रियों को वश में करना चाहिए। असली *दम* का अर्थ है इन्द्रियों की अवांछित कार्यवाहियों को वश में करना।

स्वर्ग, मोक्ष कृष्ण-भक्त 'नरक' करि' माने ।
कृष्ण-निष्ठा, तृष्णा-त्याग——शान्तेर 'दुइ' गुणे ॥ २१५ ॥

स्वर्ग, मोक्ष कृष्ण-भक्त 'नरक' करि' माने ।
कृष्ण-निष्ठा, तृष्णा-त्याग——शान्तेर 'दुइ' गुणे ॥ २१५ ॥

स्वर्ग—स्वर्ग; **मोक्ष**—मुक्ति; **कृष्ण-भक्त**—कृष्ण भक्त; **नरक करि' माने**—नरक जैसा समझता है; **कृष्ण-निष्ठा**—कृष्ण के चरणकमलों पर स्थित रहना; **तृष्णा-त्याग**—सभी भौतिक कामनाओं का त्याग; **शान्तेर**—शान्त पुरुष के; **दुइ गुणे**—दो दिव्य गुण हैं।

अनुवाद

"जब भक्त शान्त रस की भूमिका पर अवस्थित होता है, तब वह न तो स्वर्ग जाने की इच्छा करता है, न मोक्ष की। ये तो कर्म तथा ज्ञान के फल हैं और भक्त इन्हें नरक के समान मानता है। शान्त रस को प्राप्त व्यक्ति में दो दिव्य गुण प्रकट होते हैं—एक तो समस्त भौतिक इच्छाओं से विरक्ति तथा दूसरा कृष्ण के प्रति पूर्ण अनुरक्ति।

नारायण-पराः सर्वे न कुतश्चन विभ्यति ।
स्वर्गापवर्ग-नरकेष्वपि तुल्यार्थ-दर्शिनः ॥२१६॥

नारायण-पराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति ।
स्वर्गापवर्ग-नरकेष्वपि तुल्यार्थ-दर्शिनः ॥ २१६ ॥

नारायण-पराः—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति अनुरक्त भक्त; **सर्वे**—सभी; **न**—नहीं; **कुतश्चन**—किसी से भी; **बिभ्यति**—डरते हैं; **स्वर्ग**—स्वार्गिक लोकों में; **अपवर्ग**—मुक्ति में; **नरकेषु**—अथवा नरक में; **अपि**—यद्यपि; **तुल्य-अर्थ**—एक समान परिणाम; **दर्शिनः**—जो देखते हैं।

अनुवाद

"'पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण के प्रति पूरी तरह समर्पित व्यक्ति किसी वस्तु से नहीं डरता। भक्त के लिए स्वर्ग जाना, नरक में पहुँचना तथा भवबन्धन से मुक्ति—ये सभी एक जैसे होते हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (६.१७.२८) से उद्धृत है। भक्त के लिए स्वर्ग, नरक तथा भौतिक बन्धन से मुक्ति—ये सभी एक समान हैं। भक्त की एकमात्र इच्छा कृष्ण के चरणकमलों में अनुरक्त रहने की और उनकी दिव्य प्रेममयी सेवा में लगे रहने की होती है।

এই দুই গুণ ব্যাপে সব ভক্ত-জনে ।
আকাশের 'শব্দ'-গুণ যেন ভূত-গণে ॥২১৭॥

এइ দুइ গুণ ব্যাপে সব ভক্ত-জনে ।
আকাশের 'শব্দ'-গুণ য়েন ভূত-গণে ॥ ২১৭ ॥

এइ দুइ—ये दो; **गुण**—दिव्य गुण; **व्यापे**—व्याप्त होते हैं; **सब भक्त-जने**—सभी भक्तों के जीवन में; **आकाशेर**—आकाश के; **शब्द-गुण**—शब्द गुण; **य़ेन**—की तरह; **भूत-गणे**—अन्य भौतिक तत्त्व।

अनुवाद

"शान्त-रस के ये दोनों गुण सभी भक्तों के जीवन में व्याप्त रहते हैं। ये आकाश में शब्द के गुण के समान हैं। शब्द ध्वनि समस्त भौतिक तत्त्वों में पाई जाती है।

तात्पर्य

श्लोक २१५ में वर्णित शान्त-रस के दो गुण सभी प्रकार के भक्तों में पाये जाते हैं, चाहे वे दास्य-रस, सख्य-रस, वात्सल्य-रस या मधुर-रस में क्यों न स्थित हों। यहाँ पर शब्द का उदाहरण दिया गया है। शब्द न केवल आकाश में विद्यमान रहता है, अपितु वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी में भी रहता है। यह भक्ति की वैज्ञानिक व्याख्या है। जिस तरह शब्द सारे भौतिक तत्त्वों में उपस्थित रहता है, उसी तरह शान्त-रस सभी भक्तों में पाया जाता है, चाहे वे दास्य-रस के पद पर हों अथवा सख्य-रस, वात्सल्य-रस या मधुर-रस के पद पर हों।

शान्तेर स्वभाव——कृष्णे ममता-गन्ध-हीन ।
'परं-ब्रह्म'-'परमात्मा'-ज्ञान प्रवीण ॥ २१८॥

शान्तेर स्वभाव—शान्त रस का स्वभाव; **कृष्णे**—कृष्ण में; **ममता-गन्ध-हीन**—लेशमात्र ममता के बिना; **परम्-ब्रह्म**—निर्गुण ब्रह्म; **परमात्मा**—परमात्मा; **ज्ञान**—ज्ञान; **प्रवीण**—प्रधानता।

अनुवाद

"यह शान्त-रस का स्वभाव है कि उसमें रंचमात्र भी ममता नहीं रहती। प्रत्युत निर्विशेष ब्रह्म तथा अन्तर्यामी परमात्मा का ज्ञान प्रमुख होता है।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की निर्विशेष धारणा के कारण शान्त-रस भक्त निर्विशेष ब्रह्म या परम सत्य के स्थानीय पहलू—अन्तर्यामी परमात्मा की पूजा करता है। वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाता।

केवल 'स्वरूप-ज्ञान' हय शान्त-रसे ।
'पूर्णैश्वर्य-प्रभु-ज्ञान' अधिक हय दास्ये ॥ २१९॥

केवल 'स्वरूप-ज्ञान' हय शान्त-रसे ।
'पूर्णैश्वर्य्य-प्रभु-ज्ञान' अधिक हय दास्ये ॥ २१९ ॥

केवल—केवल; **स्वरूप-ज्ञान**—स्वरूप ज्ञान; **हय**—होता है; **शान्त-रसे**—शान्त रस में; **पूर्ण-ऐश्वर्य्य-प्रभु-ज्ञान**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पूर्ण ऐश्वर्य का ज्ञान; **अधिक**—अधिक; **हय**—हो जाता है; **दास्ये**—दास्य रस में।

अनुवाद

"शान्त-रस के पद पर मनुष्य को केवल अपनी वैधानिक स्थिति का ही पता चल पाता है। किन्तु जब वह दास्य-रस के पद पर उन्नति करता है, तब वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पूर्ण ऐश्वर्य को अच्छी तरह से समझ पाता है।

ঈশ্বর-জ্ঞান, সম্ভ্রম-গৌরব প্রচুর ।
'সেবা' করি' কৃষ্ণে সুখ দেন নিরন্তর ॥ ২২০ ॥
ईश्वर-ज्ञान, सम्भ्रम-गौरव प्रचुर ।
'सेवा' करि' कृष्णे सुख देन निरन्तर ॥ २२० ॥

ईश्वर-ज्ञान—परम नियन्ता का ज्ञान; **सम्भ्रम-गौरव**—भय और पूजा; **प्रचुर**—अधिक; **सेवा**—सेवा; **करि'**—करके; **कृष्णे**—भगवान् कृष्ण को; **सुख**—सुख; **देन**—देता है; **निरन्तर**—निरन्तर।

अनुवाद

"दास्य-रस पद पर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का ज्ञान सम्भ्रम तथा गौरव समेत प्रकट होता है। भगवान् कृष्ण की सेवा करके दास्य-रस भक्त भगवान् को निरन्तर सुख प्रदान करता है।

শান্তের গুণ দাস্যে আছে, অধিক—'সেবন' ।
অতএব দাস্য-রসের এই 'দুই' গুণ ॥ ২২১ ॥
शान्तेर गुण दास्ये आछे, अधिक—'सेवन' ।
अतएव दास्य-रसेर एइ 'दुइ' गुण ॥ २२१ ॥

शान्तेर—शान्त रस के स्तर पर; **गुण**—गुण; **दास्ये**—दास्य रस में; **आछे**—हैं;

अधिक—अधिक; **सेवन**—सेवा; **अतएव**—इसलिए; **दास्य-रसेर**—दास्य रस के स्तर के; **एइ दुइ गुण**—ये दो गुण (शान्त और दास्य)।

अनुवाद

"शान्त-रस के गुण दास्य-रस में भी पाये जाते हैं, किन्तु इसमें सेवा जुड़ जाती है। इस तरह दास्य-रस पद में शान्त-रस तथा दास्य-रस—दोनों के ही गुण रहते हैं।

शान्तेर गुण, दास्येर सेवन—सख्ये दुइ हय ।
दास्येर 'सम्भ्रम-गौरव'-सेवा, सख्ये 'विश्वास'-मय ॥२२२॥

शान्तेर गुण, दास्येर सेवन—सख्ये दुइ हय ।
दास्येर 'सम्भ्रम-गौरव'-सेवा, सख्ये 'विश्वास'-मय ॥ २२२ ॥

शान्तेर गुण—शान्त रस के गुण; **दास्येर सेवन**—दास्य रस की सेवा; **सख्ये**—सखा के स्तर पर; **दुइ**—दोनों रसों के गुण; **हय**—होते हैं; **दास्येर**—दास्य रस के स्तर के; **सम्भ्रम-गौरव**—भय और सम्मान से; **सेवा**—सेवा; **सख्ये**—सख्य रस के स्तर पर; **विश्वास-मय**—विश्वास से मिश्रित।

अनुवाद

"सख्य-रस पद में शान्त-रस के गुण तथा दास्य-रस की सेवा दोनों ही विद्यमान रहते हैं। सख्य पद पर दास्य-रस के गुणों के साथ आदरयुक्त भय के स्थान पर सख्य का विश्वास मिला रहता है।

काङ्धे चड़े, काङ्धे चड़ाय, करे क्रीड़ा-रण ।
कृष्णे सेवे, कृष्णे कराय आपन-सेवन! ॥२२३॥

कान्धे चड़े, कान्धे चड़ाय, करे क्रीड़ा-रण ।
कृष्णे सेवे, कृष्णे कराय आपन-सेवन! ॥ २२३ ॥

कान्धे—कन्धों पर; **चड़े**—चढ़ता है; **कान्धे चड़ाय**—कभी-कभी अपने कन्धों पर चढ़ाता है; **करे**—करता है; **क्रीड़ा-रण**—क्रीड़ा युद्ध; **कृष्णे सेवे**—कृष्ण की सेवा करता है; **कृष्णे**—कृष्ण से; **कराय**—करवाता है; **आपन-सेवन**—अपनी सेवा।

अनुवाद

"सख्य-रस पद पर कभी भक्त भगवान् की सेवा करता है, तो कभी

बदले में कृष्ण से अपनी सेवा करवाता है। क्रीड़ा-युद्ध में ग्वालबाल कभी कृष्ण के कन्धों पर चढ़ जाते थे और कभी वे कृष्ण को अपने कन्धों पर चढ़ा लेते थे।

विश्रम्भ-प्रधान सख्य——गौरव-सम्भ्रम-हीन ।
अतएव सख्य-रसेर 'तिन' गुण——चिह्न ॥ २२४ ॥

विश्रम्भ-प्रधान सख्य——गौरव-सम्भ्रम-हीन ।
अतएव सख्य-रसेर 'तिन' गुण——चिह्न ॥ २२४ ॥

विश्रम्भ-प्रधान सख्य—सख्य रस में, जिसमें आत्मीयता प्रधान है; **गौरव-सम्भ्रम**—भय और सम्मान; **हीन**—रहित; **अतएव**—इसलिए; **सख्य-रसेर**—सख्य रस के स्तर का; **तिन गुण**—तीन रसों (शान्त, दास्य और सख्य) के गुण; **चिह्न**—चिह्न (लक्षण)।

अनुवाद

"चूँकि सख्य भाव में आत्मीयता प्रधान होती है, अतएव इसमें संभ्रम तथा गौरव (आदरयुक्त भय) अनुपस्थित रहते हैं। अतएव सख्य-रस में तीन रसों के गुण विद्यमान होते हैं।

'ममता' अधिक, कृष्णे आत्म-सम ज्ञान ।
अतएव सख्य-रसेर वश भगवान् ॥ २२५ ॥

'ममता' अधिक, कृष्णे आत्म-सम ज्ञान ।
अतएव सख्य-रसेर वश भगवान् ॥ २२५ ॥

ममता—आत्मीयता; **अधिक**—अधिक; **कृष्णे**—कृष्ण के साथ; **आत्म-सम ज्ञान**—समानता का ज्ञान; **अतएव**—इसलिए; **सख्य-रसेर**—साख्य रस से; **वश**—वशीभूत; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"'सख्य-रस के पद पर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपने भक्तों के वश में रहते हैं, क्योंकि वे भक्त कृष्ण के घनिष्ठ होते हैं और अपने आपको उन्हीं के समान मानते हैं।

वात्सल्ये शान्तेर गुण, दास्येर सेवन ।
सेइ सेइ सेवनेर इहाँ नाम—'पालन' ॥२२६॥

वात्सल्ये शान्तेर गुण, दास्येर सेवन ।
सेइ सेइ सेवनेर इहाँ नाम—'पालन' ॥ २२६ ॥

वात्सल्ये—वात्सल्य रस में; **शान्तेर गुण**—शान्त रस के गुण; **दास्येर सेवन**—दास्य रस की सेवा; **सेइ सेइ सेवनेर**—शान्त रस, दास्य रस तथा सख्य रस की सेवा; **इहाँ**—इस स्तर पर; **नाम**—नामक; **पालन**—पालन।

अनुवाद

"वात्सल्य प्रेम के पद पर शान्त-रस, दास्य-रस तथा सख्य-रस के गुण 'पालन' नामक सेवा में परिणत हो जाते हैं।

सख्येर गुण—'असङ्कोच', 'अगौरव' सार ।
ममताधिक्ये ताड़न-भर्त्सन-व्यवहार ॥२२७॥

सख्येर गुण—'असङ्कोच', 'अगौरव' सार ।
ममताधिक्ये ताड़न-भर्त्सन-व्यवहार ॥ २२७ ॥

सख्येर गुण—साख्य रस का गुण; **असङ्कोच**—औपचारिकता रहित; **अगौरव**—बिना किसी सम्मान के; **सार**—सार; **ममता-अधिक्ये**—और अधिक आत्मीयता के कारण; **ताड़न**—सजा; **भर्त्सन**—डाँट-डपट का; **व्यवहार**—व्यवहार।

अनुवाद

"सख्य प्रेम का सार है ममता (घनिष्ठता) जिसमें दास्य-रस की औपचारिकता तथा आदर का अभाव रहता है। अधिक घनिष्ठता का भाव होने से भक्त वात्सल्य-रस में कार्य करते हुए भगवान् को सामान्य रूप से दंड देता है और फटकारता है।

आपनारे 'पालक' ज्ञान, कृष्णे 'पाल्य'-ज्ञान ।
'चारि' गुणे वात्सल्य रस—अमृत-समान ॥२२८॥

आपनारे 'पालक' ज्ञान, कृष्णे 'पाल्य'-ज्ञान ।
'चारि' गुणे वात्सल्य रस—अमृत-समान ॥ २२८ ॥

आपनारे—अपने आपको; **पालक ज्ञान**—पालक का भाव; **कृष्णे**—भगवान् कृष्ण में;

पाल्य—पालन पोषण के पात्र; **ज्ञान**—ज्ञान, भाव; **चारि**—चार; **गुणे**—गुणों में; **वात्सल्य रस**—वात्सल्य रस; **अमृत-समान**—अमृत समान।

अनुवाद

"वात्सल्य-रस में भक्त अपने आपको भगवान् का पालक समझता है। इस तरह भगवान् पालन के पात्र रहते हैं, जैसाकि पुत्र होता है। अतएव यह रस शान्त, दास्य, सख्य तथा वात्सल्य रस के चार गुणों से ओतप्रोत रहता है। यह अधिक दिव्य अमृत है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में विभिन्न रसों के इस जटिल विवरण का संक्षिप्त सारांश दिया है। वे कहते हैं कि भगवान् की सेवा में स्थिर हो जाने पर भक्त सारी भौतिक इच्छाओं से रहित हो जाता है। शान्त-रस के स्तर पर ये दो दिव्य गुण हैं। जिस तरह सारे भौतिक तत्त्वों में शब्द ध्वनि पाई जाती है, उसी तरह शान्त-रस के ये दो गुण अन्य सारे रसों—दास्य-रस, सख्य-रस, वात्सल्य-रस तथा मधुर-रस में व्याप्त हैं। यद्यपि शान्त रस में कृष्ण के प्रति आदरयुक्त भय के साथ अनुरक्ति होती है, क्योंकि इस रस के दो महत्त्वपूर्ण दिव्य गुण—कृष्ण से अनुरक्ति तथा भौतिक इच्छाओं से विरक्ति—विद्यमान रहते हैं, फिर भी इसमें घनिष्ठता (ममता) के गुण का अभाव रहता है। इसका कारण यह है कि शान्त रस में निर्विशेष ब्रह्म तथा अन्तर्यामी परमात्मा के लिए आसक्ति की प्रधानता रहती है। दूसरे शब्दों में, शान्त रस में उस घनिष्ठता का अभाव रहता है, जिसके कारण मनुष्य कृष्ण को अपने एकमात्र आश्रय तथा मित्र मानता है, क्योंकि शान्त-रस में मनुष्य कृष्ण को निर्विशेष परब्रह्म या अन्तर्यामी परमात्मा के रूप में मानता है। यह समझ ज्ञानी के चिन्तनयुक्त ज्ञान पर आधारित होती है। किन्तु जब इस ज्ञान का और अधिक विकास होता है, तब मनुष्य आश्वस्त हो जाता है कि परमात्मा उसके स्वामी हैं और जीव उनका सनातन सेवक है। तब उसे *दास्य-रस* का पद प्राप्त होता है। दास्य-रस में भगवान् को आदरयुक्त भय के साथ स्वीकार किया जाता है। शान्त-रस में यद्यपि कोई सक्रिय सेवा नहीं रहती, किन्तु दास्य-रस में सक्रिय सेवा प्रधान बन जाती है। दूसरे शब्दों में, दास्य-रस में शान्त रस के

गुण तथा सेवा प्रधान रूप में लक्षित होते हैं। इसी प्रकार जब यही रस *सख्य-रस* में विकसित हो जाता है, तब उसमें मैत्रीपूर्ण घनिष्ठता जुड़ जाती है। इसलिए सख्य-रस में आदरयुक्त भय नहीं रह जाता। इसलिए सख्य-रस में तीन रसों के गुण निहित रहते हैं—शान्त, दास्य तथा सख्य। इसी तरह वात्सल्य प्रेम में शान्त रस, सख्य रस तथा दास्य रस के गुण दूसरे रूप में पूरी तरह विकसित होते हैं—भगवान् के पालक के रूप में। अत: वात्सल्य रस में चार रसों के गुणों का मेल रहता है—शान्त, दास्य, सख्य तथा वात्सल्य, जिससे भक्त पालक के पद पर आसीन हो जाता है। निस्सन्देह, भक्त बिना किसी औपचारिकता के पालक का पद ले लेता है और भगवान् को पालन के पात्र समझने लगता है। इस तरह वात्सल्य रस के स्तर पर कृष्ण-प्रेम के चार दिव्य रसों के गुण उपस्थित रहते हैं।

সে অমৃতানন্দে ভক্ত সহ ডুবেন আপনে ।
'কৃষ্ণ—ভক্ত-বশ' গুণ কহে ঐশ্বর্য-জ্ঞানি-গণে ॥২২৯॥

से अमृतानन्दे भक्त सह डुबेन आपने ।
'कृष्ण—भक्त-वश' गुण कहे ऐश्वर्य-ज्ञानि-गणे ॥ २२९ ॥

से—वही भगवान् कृष्ण; **अमृत-आनन्दे**—आध्यात्मिक आनन्द में; **भक्त**—भक्त; **सह**—के साथ; **डुबेन**—डूब जाते हैं; **आपने**—स्वयं; **कृष्ण**—कृष्ण; **भक्त-वश**—भक्त के वश में होकर; **गुण**—गुण; **कहे**—कहते हैं; **ऐश्वर्य-ज्ञानि-गणे**—कृष्ण के ऐश्वर्य को जानने वाले विद्वान पण्डित।

अनुवाद

"कृष्ण तथा उनके भक्त के बीच आध्यात्मिक आनन्द के आदान-प्रदान की तुलना, जिसमें कृष्ण अपने भक्त के वश में रहते हैं, उस अमृत के सागर से की जाती है, जिसमें भक्त तथा कृष्ण डुबकी लगाते हैं। यह उन विद्वानों का मत है, जो कृष्ण के ऐश्वर्य का गुणगान करते हैं।

ইতীদৃঙ্ময়-লীলাভিরানন্দ-কুণ্ডে
স্ব-ঘোষং নিমজ্জন্তমাখ্যাপয়ন্তম্ ।

तदीयेशित-ज्ञेषु भक्तैर्जितत्वं
पुनः प्रेमतस्तं शतावृत्ति वन्दे ॥२३०॥

इतीदृक्स्व-लीलाभिरानन्द-कुण्डे
स्वघोषं निमज्जन्तमाख्यापयन्तम् ।
तदीयेशितज्ञेषु भक्तैर्जितत्वं
पुनः प्रेमतस्तं शतावृत्ति वन्दे ॥ २३० ॥

इति—इस प्रकार; **ईदृक्-स्व-लीलाभिः**—अपनी दिव्य लीलाओं में इन 'दामोदर' द्वारा; **आनन्द-कुण्डे**—दिव्य आनन्द के सागर में; **स्व-घोषम्**—अपने निजी साथी; **निमज्जन्तम्**—डूबकर; **आख्यापयन्तम्**—घोषित करके; **तदीय**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की; **ईशित-ज्ञेषु**—ऐश्वर्य ज्ञान में निपुण विद्वानों में से; **भक्तैः**—भक्तों से; **जितत्वम्**—वशीभूत; **पुनः**—दोबारा; **प्रेमतः**—प्रेम से; **तम्**—उनको; **शत-आवृत्ति**—सैंकड़ो गुना; **वन्दे**—मैं सादर प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद

"'मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को फिर से सादर नमस्कार करता हूँ। हे प्रभु, मैं आपको सम्पूर्ण स्नेह के साथ सैकड़ों-हजारों बार नमस्कार करता हूँ, क्योंकि आप अपनी निजी लीलाओं से गोपियों को अमृतसागर में निमग्न कर देते हैं। आपके ऐश्वर्य के कारण भक्तगण सामान्यतया घोषित करते हैं कि आप उनकी भावनाओं द्वारा सदैव वशीभूत होते हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *पद्म पुराण* के *दामोदराष्टक* में से है।

মধুর-রসে—কৃষ্ণ-নিষ্ঠা, সেবা অতিশয় ।
সখ্যের অসঙ্কোচ, লালন-মমতাধিক্য হয় ॥২৩১॥

মধুর-রসে—কৃষ্ণ-নিষ্ঠা, সেবা অতিশয় ।
সখ্যের অসঙ্কোচ, লালন-মমতাধিক্য হয় ॥ ২৩১ ॥

मधुर-रसे—माधुर्य रस के स्तर पर; **कृष्ण-निष्ठा**—कृष्ण से निष्ठा; **सेवा अतिशय**—उन्नत सेवा; **सख्येर**—सख्य स्तर पर; **असङ्कोच**—असंकोच; **लालन**—पालन-पोषण; **ममता-अधिक्य**—आत्मीयता में वृद्धि; **हय**—होती है।

अनुवाद

"माधुर्य रस में कृष्ण के प्रति निष्ठा, उनकी सेवा, सख्य का असंकोच

भाव तथा पालन की भावना—इन सबकी घनिष्ठता की वृद्धि हो जाती है।

কান্ত-ভাবে নিজাঙ্গ দিয়া করেন সেবন ।
অতএব মধুর-রসের হয় 'পঞ্চ' গুণ ॥২৩২॥

कान्त-भावे निजाङ्ग दिया करेन सेवन ।
अतएव मधुर-रसेर हय 'पञ्च' गुण ॥ २३२ ॥

कान्त-भावे—माधुर्य प्रेम के स्तर पर; **निज-अङ्ग**—अपना शरीर; **दिया**—देकर; **करेन**—करता है; **सेवन**—सेवा; **अतएव**—अतएव; **मधुर-रसेर**—माधुर्य रस के; **हय**—होते हैं; **पञ्च गुण**—पाँच प्रकार के दिव्य गुण।

अनुवाद

"माधुर्य रस में भक्त भगवान् की सेवा में अपना शरीर अर्पित कर देता है। अतः इस रस में पाँचों रसों के दिव्य गुण उपस्थित रहते हैं।

तात्पर्य

शान्त रस में कृष्ण के लिए अनुरक्ति, दास्य रस में भगवान् की सेवा करना, सख्य रस में निःसंकोच भाव से सेवा करना तथा वात्सल्य रस में पालनकर्ता के भाव के साथ भगवान् की सेवा करना—ये सभी माधुर्य प्रेम के स्तर पर सम्मिलित हो जाते हैं, जब भक्त अपना देह समर्पित करके भगवान् की सेवा करना चाहता है। इस तरह अन्य रसों के गुण माधुर्य प्रेम के अमृत की रचना करने के लिए एकत्रित होती हैं। इस स्तर पर भक्त की सारी विभिन्न भावनाएँ एकरूप हो जाती हैं।

আকাশাদি গুণ যেন পর পর ভূতে ।
এক-দুই-তিন-চারি ক্রমে পঞ্চ পৃথিবীতে ॥২৩৩॥

आकाशादि गुण येन पर पर भूते ।
एक-दुइ-तिन-चारि क्रमे पञ्च पृथिवीते ॥ २३३ ॥

आकाश-आदि—आकाश आदि; **गुण**—गुण; **येन**—जैसे; **पर पर**—एक के बाद एक; **भूते**—भौतिक तत्त्वों में; **एक**—एक; **दुइ**—दो; **तिन**—तीन; **चारि**—चार; **क्रमे**—इस क्रम में; **पञ्च**—सभी पाँच गुण; **पृथिवीते**—पृथ्वी में।

अनुवाद

"आकाश आदि भौतिक तत्त्वों में सारे गुण एक के बाद एक विकसित होते जाते हैं। क्रमिक विकास द्वारा सर्वप्रथम एक गुण उत्पन्न होता है, फिर दो भौतिक गुण, तब तीन और चार गुण विकसित होते हैं। और अन्त में पृथ्वी में पाँचों गुण पाये जाते हैं।

এই-মত মধুরে সব ভাব-সমাহার ।
অতএব আস্বাদাধিক্যে করে চমত্কার ॥২৩৪॥

এइ-মত মধুরে সব ভাব-সমাহার ।
অতএব আস্বাদাধিক্যে করে চমত্কার ॥ ২৩৪॥

এइ-মত—इस प्रकार; **মধুরে**—माधुर्य रस में; **সব**—सब; **ভাব-সমাহার**—भावों का मिलना; **অতএব**—अतएव; **আস্বাদ-অধিক্যে**—भक्तों के आस्वादन के बढ़ जाने से; **করে চমত্কার**—निश्चित रूप से अद्भुत है।

अनुवाद

"इसी तरह माधुर्य रस में भक्तों के सारे भाव घुलमिल जाते हैं। इसका गाढ़ा स्वाद निश्चित रूप से अद्भुत होता है।"

এই ভক্তি-রসের করিলাঙ, দিগ্দরশন ।
ইহার বিস্তার মনে করিহ ভাবন ॥২৩৫॥

এइ ভক্তি-রসের করিলাঙ; দিগ্দরশন ।
ইহার বিস্তার মনে করিহ ভাবন ॥ ২৩৫॥

এइ—यह; **ভক্তি-রসের**—भक्ति रस का; **করিলাঙ**—मैंने वर्णन किया है; **দিক্-দরশন**—सामान्य अवलोकन; **ইহার**—इसका; **বিস্তার**—विस्तार; **মনে**—मन के भीतर; **করিহ**—तुम्हें करना चाहिए; **ভাবন**—विचार।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह कहकर समाप्त किया, "मैंने भक्ति रसों का सामान्य सर्वेक्षण ही प्रस्तुत किया है। इसे किस तरह समंजित किया जाए तथा विस्तारित किया जाए, इसके विषय में आप विचार कर सकते हैं।

ভাবিতে ভাবিতে কৃষ্ণ স্ফুরয়ে অন্তরে ।
কৃষ্ণ-কৃপায় অজ্ঞ পায় রস-সিন্ধু-পারে ॥২৩৬॥

ভাবিতে ভাবিতে কৃষ্ণ স্ফুরয়ে অন্তরে ।
কৃষ্ণ-কৃপায় অজ্ঞ পায় রস-সিন্ধু-পারে ॥ ২৩৬ ॥

भावित भावित—इस प्रकार गहराई से चिन्तन करते करते; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **स्फुरये अन्तरे**—भीतर प्रकट होते हैं; **कृष्ण-कृपाय**—कृष्ण की कृपा से; **अज्ञ**—जिसको अधिक ज्ञान नहीं है; **पाय**—पाता है; **रस-सिन्धु-पारे**—दिव्य रस के सागर के दूसरे पार।

अनुवाद

"जब कोई निरन्तर कृष्ण का चिन्तन करता है, तब उनका प्रेम हृदय के भीतर प्रकट होता है। अनजान होते हुए भी कृष्ण की कृपा से मनुष्य दिव्य प्रेम के सागर के बहुत दूर वाले तट तक पहुँच सकता है।"

এত বলি' প্রভু তাঁরে কৈলা আলিঙ্গন ।
বারাণসী চলিবারে প্রভুর হৈল মন ॥২৩৭॥

এত বলি' প্রভু তাঁরে কৈলা আলিঙ্গন ।
বারাণসী চলিবারে প্রভুর হৈল মন ॥ ২৩৭ ॥

एत बलि'—यह कहकर; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **ताँरे**—रूप गोस्वामी को; **कैला**—किया; **आलिङ्गन**—आलिंगन; **वाराणसी**—बनारस की ओर; **चलिबारे**—जाने के लिए; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **हैल**—हो गया; **मन**—मन।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी का आलिंगन किया। तब महाप्रभु ने बनारस शहर जाने का निश्चय किया।

প্রভাতে উঠিয়া যবে করিলা গমন ।
তবে তাঁর পদে রূপ করে নিবেদন ॥২৩৮॥

প্রভাতে উঠিয়া য়বে করিলা গমন ।
তবে তাঁর পদে রূপ করে নিবেদন ॥ ২৩৮ ॥

प्रभाते—प्रात: काल; **उठिया**—उठकर; **य्रबे**—जब; **करिला**—किया; **गमन**—प्रस्थान;

तबे—तब; **ताँर**—उनके; **पदे**—चरणकमलों पर; **रूप**—श्रील रूप गोस्वामी; **करे**—किया; **निवेदन**—निवेदन।

अनुवाद

अगले दिन प्रातःकाल जब श्री चैतन्य महाप्रभु जगे और वाराणसी (बनारस) के लिए प्रस्थान करने वाले थे, तब श्रील रूप गोस्वामी ने महाप्रभु के चरणकमलों में यह निवेदन किया।

'आज्ञा हय, आसि मुञि श्री-चरण-सङ्गे ।
सहिते ना पारि मुञि विरह-तरङ्गे' ॥२३९॥

'आज्ञा हय, आसि मुञि श्री-चरण-सङ्गे ।
सहिते ना पारि मुञि विरह-तरङ्गे' ॥ २३९ ॥

आज्ञा हय—यदि आज्ञा हो तो; **आसि**—आऊँ; **मुञि**—मैं; **श्री-चरण-सङ्गे**—आपके साथ; **सहिते**—सहन करने के लिए; **ना पारि**—असमर्थ हूँ; **मुञि**—मैं; **विरह-तरङ्गे**—विरह की तरंगें।

अनुवाद

"यदि आप मुझे आज्ञा दें, तो मैं भी आपके साथ चलूँ। विरह की तरंगों को सहन कर पाना मेरे लिए सम्भव नहीं है।"

प्रभु कहे,—तोमार कर्तव्य, आमार वचन ।
निकटे आसियाछ तुमि, याह वृन्दावन ॥२४०॥

प्रभु कहे,—तोमार कर्तव्य, आमार वचन ।
निकटे आसियाछ तुमि, याह वृन्दावन ॥ २४० ॥

प्रभु कहे—श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **तोमार कर्तव्य**—तुम्हारा कर्तव्य; **आमार वचन**—मेरी आज्ञा; **निकटे आसियाछ**—तुम आ गये हो निकट; **तुमि**—तुम; **याह**—जाओ; **वृन्दावन**—वृन्दावन को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम मेरे आदेश का पालन करो। तुम वृन्दावन के निकट आ चुके हो। अब तुम वहीं जाओ।

বৃন্দাবন হৈতে তুমি গৌড়-দেশ দিয়া ।
আমারে মিলিবা নীলাচলেতে আসিয়া ॥২৪১॥

বৃন্দাবন হৈতে তুমি গৌড়-দেশ দিয়া ।
আমারে মিলিবা নীলাচলেতে আসিয়া ॥ ২৪১ ॥

বৃন্দাবন হৈতে—বৃন্দাবন से; **তুমি**—तुम; **গৌড়-দেশ দিয়া**—बंगाल के रास्ते से; **আমারে**—मुझे; **মিলিবা**—मिलोगे; **নীলাচলেতে**—जगन्नाथ पुरी में; **আসিয়া**—आकर।

अनुवाद

"बाद में तुम वृन्दावन से बंगाल (गौड़देश) होते हुए जगन्नाथपुरी जा सकते हो। वहाँ तुम पुनः मुझसे मिलोगे।"

তাঁরে আলিঙ্গিয়া প্রভু নৌকাতে চড়িলা ।
মূর্চ্ছিত হঞা তেঁহো তাহাঞি পড়িলা ॥২৪২॥

তাঁরে আলিঙ্গিয়া প্রভু নৌকাতে চড়িলা ।
মূর্চ্ছিত হঞা তেঁহো তাহাঞি পড়িলা ॥ ২৪২ ॥

তাঁরে—उनको; **আলিঙ্গিয়া**—आलिंगन करके; **প্রভু**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **নৌকাতে**—नौका में; **চড়িলা**—चढ़ गये; **মূর্চ্ছিত হঞা**—मूर्च्छित होकर; **তেঁহো**—वे (श्रील रूप गोस्वामी); **তাহাঞি**—उसी स्थान पर; **পড়িলা**—गिर गये।

अनुवाद

रूप गोस्वामी का आलिंगन करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु एक नाव में सवार हो गये। रूप गोस्वामी मूर्च्छित होकर उसी स्थान पर गिर पड़े।

দাক্ষিণাত্য-বিপ্র তাঁরে ঘরে লঞা গেলা ।
তবে দুই ভাই বৃন্দাবনেরে চলিলা ॥২৪৩॥

দাক্ষিণাত্য-বিপ্র তাঁরে ঘরে লঞা গেলা ।
তবে দুই ভাই বৃন্দাবনেরে চলিলা ॥ ২৪৩ ॥

দাক্ষিণাত্য-বিপ্র—दक्षिण का ब्राह्मण; **তাঁরে**—उनको (रूप गोस्वामी को); **ঘরে লঞা**—अपने घर ले जाकर; **গেলা**—गया; **তবে**—तत्पश्चात्; **দুই ভাই**—दोनों भाई; **বৃন্দাবনেরে**—वृन्दावन की ओर; **চলিলা**—चल पड़े।

अनुवाद

एक दाक्षिणात्य ब्राह्मण रूप गोस्वामी को अपने घर ले गया। तत्पश्चात् दोनों भाई वृन्दावन के लिए चल पड़े।

महाप्रभु चलि' चलि' आइला वाराणसी ।
चन्द्रशेखर मिलिला ग्रामेर बाहिरे आसि' ॥२४४॥

महाप्रभु चलि' चलि' आइला वाराणसी ।
चन्द्रशेखर मिलिला ग्रामेर बाहिरे आसि' ॥ २४४॥

महाप्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु; **चलि' चलि'**—चलते चलते; **आइला**—आ पहुँचे; **वाराणसी**—वाराणसी; **चन्द्रशेखर**—चन्द्रशेखर; **मिलिला**—वे मिले; **ग्रामेर**—गाँव के; **बाहिरे**—बाहर; **आसि'**—आकर।

अनुवाद

चलते चलते श्री चैतन्य महाप्रभु अन्ततः वाराणसी आ पहुँचे, जहाँ शहर से बाहर आ रहे चन्द्रशेखर से उनकी भेंट हुई।

रात्रे तेँहो स्वप्न देखे,—प्रभु आइला घरे ।
प्रातः-काले आसि' रहे ग्रामेर बाहिरे ॥२४५॥

रात्रे तेंहो स्वप्न देखे,—प्रभु आइला घरे ।
प्रातः-काले आसि' रहे ग्रामेर बाहिरे ॥ २४५॥

रात्रे—रात को; **तेंहो**—उन्होंने (चन्द्रशेखर ने); **स्वप्न**—एक स्वप्न; **देखे**—देखा; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **आइला**—आये हैं; **घरे**—उनके घर पर; **प्रातः-काले**—प्रातः काल; **आसि'**—आकर; **रहे**—वह रहा; **ग्रामेर बाहिरे**—नगर के बाहर।

अनुवाद

चन्द्रशेखर ने स्वप्न में देखा था कि श्री चैतन्य महाप्रभु उसके घर आये हुए हैं; अतः प्रातःकाल वे महाप्रभु का स्वागत करने के लिए शहर के बाहर चले आये थे।

आचम्बिते प्रभु देखि' चरणे पड़िला ।
आनन्दित हञा निज-गृहे लञा गेला ॥२४६॥

आचम्बिते प्रभु देखि' चरणे पड़िला ।
आनन्दित हञा निज-गृहे लञा गेला ॥ २४६ ॥

आचम्बिते—अचानक; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **देखि'**—देखकर; **चरणे**—उनके चरणों पर; **पड़िला**—वह गिर पड़ा; **आनन्दित हञा**—अत्यन्त आनन्दित होकर; **निज-गृहे**—अपने घर को; **लञा**—लेकर; **गेला**—गया।

अनुवाद

जब चन्द्रशेखर शहर के बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे, तब उन्होंने महाप्रभु को सहसा आते देखा। वे उनके चरणों पर गिर पड़े और परम आनन्दित होकर उन्हें अपने घर ले गये।

তপন-মিশ্র শুনি' আসি' প্রভুরে মিলিলা ।
ইষ্ট-গোষ্ঠী করি' প্রভুর নিমন্ত্রণ কৈলা ॥২৪৭॥

তপন-মিশ্র শুনি' আসি' প্রভুরে মিলিলা ।
ইষ্ট-গোষ্ঠী করি' প্রভুর নিমন্ত্রণ কৈলা ॥ ২৪৭ ॥

তপন-মিশ্র—তপন মিশ্র; **শুনি'**—সুনকর; **আসি'**—আকর; **প্রভুরে মিলিলা**—মহাপ্রভু से मिले; **ইষ্ট-গোষ্ঠী করি'**—बातचीत करके; **প্রভুর**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **নিমন্ত্রণ**—निमन्त्रण; **কৈলা**—दिया।

अनुवाद

तपन मिश्र ने भी वाराणसी में महाप्रभु के आगमन का समाचार सुना, तो वे चन्द्रशेखर के घर उनसे मिलने गये। बातचीत के बाद उन्होंने महाप्रभु को अपने यहाँ भोजन करने के लिए निमन्त्रित किया।

নিজ ঘরে লঞা প্রভুরে ভিক্ষা করাইল ।
ভট্টাচার্যে চন্দ্রশেখর নিমন্ত্রণ কৈল ॥২৪৮॥

নিজ ঘরে লঞা প্রভুরে ভিক্ষা করাইল ।
ভট্টাচার্যে চন্দ্রশেখর নিমন্ত্রণ কৈল ॥ ২৪৮ ॥

নিজ ঘরে—अपने घर; **লঞা**—लाकर; **প্রভুরে**—महाप्रभु को; **ভিক্ষা করাইল**—भोजन करवाया; **ভট্টাচার্যে**—बलभद्र भट्टाचार्य को; **চন্দ্রশেখর**—चन्द्रशेखर ने; **নিমন্ত্রণ**—निमन्त्रण; **কৈল**—दिया।

अनुवाद

तपन मिश्र चैतन्य महाप्रभु को अपने घर ले गये और उन्हें भोजन कराया। चन्द्रशेखर ने बलभद्र भट्टाचार्य को अपने घर भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया।

ভিক্ষা করাঞা মিশ্র কহে প্রভু-পায় ধরি' ।
এক ভিক্ষা মাগি, মোরে দেহ' কৃপা করি' ॥২৪৯॥

भिक्षा कराञा मिश्र कहे प्रभु-पाय धरि' ।
एक भिक्षा मागि, मोरे देह' कृपा करि' ॥ २४९ ॥

भिक्षा कराञा—भोजन करवाने के बाद; **मिश्र**—तपन मिश्र ने; **कहे**—कहा; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु के; **पाय**—चरणकमल; **धरि'**—छूकर; **एक भिक्षा**—एक अनुग्रह; **मागि**—मैं माँगता हूँ; **मोरे**—मुझे; **देह'**—कृपया दो; **कृपा करि'**—आपकी अहैतुकी कृपा से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन कराने के बाद तपन मिश्र ने महाप्रभु से एक अनुग्रह करने के लिए कहा और प्रार्थना की कि वे उन पर कृपा करें।

যাবত্তোমার হয় কাশী-পুরে স্থিতি ।
মোর ঘর বিনা ভিক্ষা না করিবা কতি ॥২৫০॥

য়াবত্তোমার হয় কাশী-পুরে স্থিতি ।
মোর ঘর বিনা ভিক্ষা না করিবা কতি ॥ ২৫০ ॥

য়াবত্—जब तक; **তোমার**—आपका; **হয়**—है; **কাশী-পুরে**—वाराणसी में; **স্থিতি**—रहना; **মোর ঘর**—मेरे घर; **বিনা**—बिना; **ভিক্ষা**—भोजन; **না করিবা**—कृपया न करना; **কতি**—कहीं भी।

अनुवाद

तपन मिश्र ने कहा, "आप जब तक वाराणसी में रुकें, तब तक कृपा करके मेरे अतिरिक्त किसी अन्य का निमन्त्रण न स्वीकार करें।"

প্রভু জানেন—দিন পাঁচ-সাত সে রহিব ।
সন্ন্যাসীর সঙ্গে ভিক্ষা কাহাঁ না করিব ॥২৫১॥

प्रभु जानेन—दिन पाँच-सात से रहिब ।
सन्न्यासीर सङ्गे भिक्षा काहाँ ना करिब ॥ २५१ ॥

प्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु; **जानेन**—जानते हैं; **दिन**—दिन; **पाँच-सात**—पाँच सात; **से**—वह; **रहिब**—मैं रहूँगा; **सन्न्यासीर सङ्गे**—मायावादी संन्यासियों के साथ; **भिक्षा**—भोजन; **काहाँ**—किसी समय; **ना करिब**—मैं नहीं करूँगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जानते थे कि उन्हें वहाँ पाँच-सात दिन रुकना है। अतः वे कोई ऐसा निमन्त्रण स्वीकार नहीं करेंगे, जिसमें मायावादी संन्यासी का हाथ हो।

এত জানি' তাঁর ভিক্ষা কৈলা অঙ্গীকার ।
বাসা-নিষ্ঠা কৈলা চন্দ্রশেখরের ঘর ॥২৫২॥

एत जानि' ताँर भिक्षा कैला अङ्गीकार ।
वासा-निष्ठा कैला चन्द्रशेखरेर घर ॥ २५२ ॥

एत जानि'—इस विचार से; **ताँर**—उनका; **भिक्षा**—भोजन; **कैला अङ्गीकार**—स्वीकार किया; **वासा-निष्ठा**—निवास; **कैला**—बनाया; **चन्द्रशेखरेर घर**—चन्द्रशेखर के घर।

अनुवाद

यह जानकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने तपन मिश्र के घर पर भोजन करना स्वीकार कर लिया। महाप्रभु ने चन्द्रशेखर के घर को अपना निवासस्थान बना लिया।

মহারাষ্ট্রীয় বিপ্র আসি' তাঁহারে মিলিলা ।
প্রভু তাঁরে স্নেহ করি' কৃপা প্রকাশিলা ॥২৫৩॥

महाराष्ट्रीय विप्र आसि' ताँहारे मिलिला ।
प्रभु ताँरे स्नेह करि' कृपा प्रकाशिला ॥ २५३ ॥

महाराष्ट्रीय विप्र—महाराष्ट्र का ब्राह्मण; **आसि'**—आकर; **ताँहारे**—उनको; **मिलिला**—मिला; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **ताँरे**—उसको; **स्नेह करि'**—स्नेहपूर्वक; **कृपा प्रकाशिला**—अपनी कृपा प्रदान की।

अनुवाद

महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने आकर महाप्रभु से भेंट की। महाप्रभु ने स्नेहवश उसे कृपा प्रदान की।

महाप्रभु आइला शुनि' शिष्ट शिष्ट जन ।
ब्राह्मण, क्षत्रिय आसि' करेन दरशन ॥२५४॥

महाप्रभु आइला शुनि' शिष्ट शिष्ट जन ।
ब्राह्मण, क्षत्रिय आसि' करेन दरशन ॥ २५४॥

महाप्रभु आइला—श्री चैतन्य महाप्रभु आये हैं; **शुनि'**—सुनकर; **शिष्ट शिष्ट जन**—सभी सम्मानित पुरुषों ने; **ब्राह्मण**—ब्राह्मण जाति के; **क्षत्रिय**—क्षत्रिय जाति के; **आसि'**—आकर; **करेन दरशन**—दर्शन किए।

अनुवाद

यह सुनकर कि श्री चैतन्य महाप्रभु पधारे हैं, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय जातियों के सारे सम्मानित व्यक्ति उनके दर्शन के लिए आये।

श्री-रूप-उपरे प्रभुर यत कृपा हैल ।
अत्यन्त विस्तार-कथा सङ्क्षेपे कहिल ॥२५५॥

श्री-रूप-उपरे प्रभुर यत कृपा हैल ।
अत्यन्त विस्तार-कथा सङ्क्षेपे कहिल ॥ २५५॥

श्री-रूप-उपरे—श्री रूप गोस्वामी पर; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु की; **यत**—जितनी; **कृपा**—कृपा; **हैल**—हुई; **अत्यन्त**—अत्यन्त; **विस्तार-कथा**—विस्तृत कथा; **सङ्क्षेपे**—संक्षेप में; **कहिल**—मैंने वर्णन की है।

अनुवाद

इस तरह श्री रूप गोस्वामी पर अत्यधिक कृपावृष्टि हुई। मैंने इन सारी कथाओं का संक्षेप में वर्णन किया है।

श्रद्धा करि' एइ कथा शुने ये जने ।
प्रेम-भक्ति पाय सेइ चैतन्य-चरणे ॥२५६॥

श्रद्धा करि' एइ कथा शुने येइ जने ।
प्रेम-भक्ति पाय सेइ चैतन्य-चरणे ॥ २५६ ॥

श्रद्धा करि'—श्रद्धापूर्वक; **एइ कथा**—यह वर्णन; **शुने**—सुनता है; **येइ जने**—जो व्यक्ति; **प्रेम-भक्ति**—प्रेम भक्ति; **पाय**—पाता है; **सेइ**—वह व्यक्ति; **चैतन्य-चरणे**—श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में।

अनुवाद

जो भी इस कथा को श्रद्धा तथा प्रेम से सुनता है, वह अवश्य ही श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में भगवत्प्रेम विकसित करता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ २५७ ॥

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ २५७ ॥

श्री-रूप—श्रील रूप गोस्वामी; **रघुनाथ**—श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; **पदे**—चरणकमलों में; **यार**—जिनकी; **आश**—आशा; **चैतन्य-चरितामृत**—*चैतन्य चरितामृत* ग्रन्थ; **कहे**—वर्णन करता है; **कृष्णदास**—श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए और उनकी कृपा की सदैव आकांक्षा करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करता हुआ श्री चैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस तरह श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के उन्नीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें महाप्रभु द्वारा प्रयाग में श्रील रूप गोस्वामी को भक्तियोग विषयक उपदेश का वर्णन हुआ है।